धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये
अंक 106
वैशाख, 2078 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

जगज्जननी जानकी के आविर्भाव के उपलक्ष्य में

शक्ति-विमर्श विशेषांक

कोविड की दूसरी लहर (2021ई.) के कारण भक्तों के लिए मन्दिर बन्द रहने के बाद भी रामनवमी के अवसर पर विधानपूर्वक पूजा अर्चना करते हुए आचार्य किशोर कुणाल।

रामनवमी के अवसर पर आयोजित हवन करते हुए आचार्य किशोर कुणाल

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

आलेख -सूची

1. **तन्त्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा**- सम्पादकीय आलेख 3
2. **अद्भुत-रामायण में मातृशक्ति सीताजी का अद्भुत स्वरुप**
   - श्री महेश प्रसाद पाठक 7
3. **जनकभूमि की परिक्रमा** - रवि संगम 12
4. **वेङ्कट कवि की कृति 'सुन्दरेश्वरजाये'**
   -श्री रवि ओझा 15
5. **शिव में समाविष्ट शक्ति** - श्री जगन्नाथ करंजे 21
6. **भगवती-तत्त्व विमर्श** -डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 25
7. **मातृशक्ति का सम्पूर्ण रूप देवी सीता में समाहित**
   -श्री राजीव नंदन मिश्र 'नन्हें' 29
8. **दुर्गा-सप्तशती में शक्ति का दार्शनिक स्वरूप**
   -डा. लक्ष्मीकान्त विमल 34
9. **श्रीराम का पट्टाभिषेक (उत्तर भारतीय कर्मकाण्ड की दृष्टि से विवेचन)**
   -पं. मार्कण्डेय शारदेय 39
10. **महाशक्ति श्री श्री माँ** -महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज 42
11. **शक्तिपूजा : मातृशक्ति का भावात्मक आधार**
    - कुमारी संगीता 46
12. **भारतीय साहित्य में शक्ति की अभिव्यंजना**
    - डा0 भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता 50
13. **अद्भुत रामायण की रामकथा** - आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 54
14. **श्रीपरशुरामकथामृत** - गिरिधरदास 60
15. **परशुराम के द्वारा सहस्रार्जुन का वध**
    - लल्लू लाल कृत 'प्रेम सागर' से उद्धृत 68
16. **पुस्तक समीक्षा, महावीर मन्दिर समाचार, जल-सूक्त, व्रत-पर्व, रामावत संगत से जुड़ें** आदि स्थायी स्तम्भ। 71 से

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 106

वैशाख, 2078 वि. सं.

28 अप्रैल-26 मई, 2021ई.

प्रधान सम्पादक

आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार:

महावीर मन्दिर,

पटना रेलवे जंक्शन के सामने

पटना- 800001, बिहार

फोन: 0612-2223798

मोबाइल: 9334468400

E-mail:

dharmayanhindi@gmail.com

Website:

www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:

9334468400

मूल्य : 20 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 105, चैत्र, 2078 वि.सं.

धर्मायण पत्रिका का रामजन्म विशेषांक समसामयिक एवं उत्कृष्ट आलेखों का उच्चस्तरीय संकलन है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार" राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है। "भगवान राम का जीवन एवं व्यक्तित्व समस्त भारतीय एवं कतिपय पाश्चात्य भाषाओं के सहस्रों ग्रन्थों का उपजीव्य रहा है।

रामनवमी के अवसर पर "राम जनम बधाई "वाली संत जानकी दास की कृति का अन्वेषण और संपादन बहुत समीचीन और सराहनीय है। पाण्डुलिपि से संपादित संपूर्ण पाठ का सिंहावलोकन करने पर यह ज्ञात हुआ कि संत जानकी दास एक शीर्ष कोटि के कवि नहीं वरन् एक महान् संगीतज्ञ भी थे। विभिन्न राग-रागिनियों एवं गायन शैलियों के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है।

श्रवण कुमार के वास्तविक नाम 'यज्ञदत्त ' की खोज बहुत रुचिकर और ज्ञानप्रद प्रयास है। राम का उदात्त चरित्र सामाजिक , सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में समन्वय का मूर्त रूप है - विद्वान् लेखक ने इसे रोचक संदर्भ सहित व्याख्यायित करने की प्रशंस्य चेष्टा की है। "राम और शिव की उपासना का समन्वय "में मिथिला प्रदेश की सांस्कृतिक गरिमा में राम और शिव की समन्वित उपासना-परंपरा को अनुस्यूत करने वाले रचनाकार धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने उल्लेख्य विषय की सामग्री एकत्र करने में अथक परिश्रम किया है। "को बड़ छोट कहत अपराधू, सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधु।" सारे लेख एक से बढ़ कर एक बहुमूल्य, पठनीय, ग्रहणीय एवं संग्रहणीय हैं। सांस्कृतिक पत्रिका 'धर्मायण' भारतीय संस्कृति और धर्म की ध्वजा चिरकाल तक लहराती रहेगी, इसी शुभैषणा के साथ!

दामोदर पाठक

सेवा निवृत्त प्राचार्य, ग्राम, पोस्ट : खुखरा, जिला : गिरिडीह, झारखण्ड।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक **जल-विमर्श विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। सनातन धर्म के विभिन्न ग्रन्थों में जल की महिमा गयी है। परम्परा से यह सिखाया जाता है कि जल में देवत्व है। नदी, सरोवर, कूप, वापी आदि के प्रति हमारे धार्मिक कर्तव्य बनते हैं। जल के प्रति हमारी आस्था को प्रदर्शित करता हुआ यह अंक प्रस्तावित है।

धर्मायण का राम जन्म विशेषांक ससमय प्राप्त हुआ। दुर्लभ और अप्रकाशित आलेखो को सुलभ और प्रकाशित कर आपने जिस प्रतिभा का परिचय दिया है वह सर्वथा वंदनीय ही नहीँ अनुकरणीय भी है। आद्योपांत मनोयोग पूर्वक पढ गया। सभी आलेख उच्च स्तरीय एवम् श्रेष्ठ हैं। धर्मायण का यह अंक विचार, भाव और भाषा सभी दृष्टियों से वैभवपूर्ण है।कोटिशः बधाइयां और शुभकामनाएं। इस अंक के प्रतिपाद्य मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम आपकी हर चाहत को राहत दें यही प्रार्थना है:

मान मिले सम्मान मिले, सुख संपत्ति का वरदान मिले।
कदम कदम पर मिले सफलता, सदियों तक पहचान मिले॥

डा जे बी पाण्डेय

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची

श्रीरामजन्म विशेषांक (अंक-105) में अन्यान्य लेखों के बीच संत जानकीदास कृत 'रामजनम बधाई' (पाण्डुलिपि से सम्पादन) की विशिष्टता अद्भुत है, क्योंकि 18 वीं शती की इस विलुप्त रचना में श्रीराम के अतिरिक्त श्रीकृष्ण से

शेषांश पृ. 11 पर

तन्त्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा

विस्तार के अर्थ में तन् धातु से 'तन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति होती है, अतः इसे वेद का विस्तार माना गया है। अथर्ववेद तन्त्र के लिए प्रसिद्ध वेद है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लौकिक प्रयोगों के द्वारा चमत्कार दिखाने की विधि वर्णित है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा की दसवीं शती तक आते आते तन्त्र-साहित्य एक दर्शन के रूप में विकसित हो गया है। लौकिक चमत्कार-प्रदर्शन से ऊपर उठकर तन्त्र की धारा में मोक्ष पाने के लिए उपाय भी खोज लिए गये हैं। अन्य आस्तिक दर्शनों की तरह ही इसमें भी ब्रह्म, माया, ईश्वर, शक्ति, संसार आदि की दार्शनिक व्याख्या की गयी है। इस प्रकार तन्त्र एक दार्शनिक धारा के रूप में व्यवस्थित हो गयी है। यही कारण है कि उपनिषद्-ग्रन्थों की शैली में अनेक ऐसे उपनिषद् लिखे गये, जिनका वर्ण्य-विषय वेद नहीं होकर तन्त्र है। शंकराचार्य के द्वारा उद्धृत मुक्तिकोपनिषद् रामोपासना विषयक तन्त्र-साहित्य है, जिसमें अनेक उपनिषदों की सूची दी गयी और उन्हें विभिन्न वेद से सम्बद्ध कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये सारे के सारे तन्त्रोपनिषद् आचार्य शंकर तक अपने स्वरूप में आ चुके थे और आचार्य शंकर के द्वारा व्याख्यायित 11 वैदिक उपनिषदों के अतिरिक्त तन्त्रोपनिषदों के साथ कुल संख्या 108 तक पहुँच गयी है।

इन तन्त्रोपनिषदों को यदि हम देवता के आधार पर विभाजित करें तो कुल पाँच शाखाओं में इन्हें हम विभक्त कर सकते हैं- सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव एवं शाक्त। अर्थात् सूर्य, शिव, गणपति, विष्णु एवं शक्ति ये मुख्य पाँच देवता इनके आराध्य हैं। इस प्रकार तन्त्र की भी ये पाँच शाखायें सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित रही। इन्हें पंचदेवता कहा गया। मिथिला की विशेषता की बात करें तो यहाँ अग्नि की पूजा विशिष्ट रूपसे चलती रही, अतः पंचदेवता की सूची में विष्णु के स्थान पर अग्नि की अवधारणा रही और विष्णु की पूजा पृथक् मानी गयी। अतः मिथिला की परम्परा में पंचदेवता और विष्णु की पूजा को आरम्भ में अनिवार्य माना गया, लेकिन शक्ति-पूजन की परम्परा इसमें भी प्रतिष्ठित रही। 108 उपनिषदों में से कुछ महत्वपूर्ण शाक्त उपनिषद् है- सीतोपनिषद्, अन्नपूर्णोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद् त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद् सौभाग्योपनिषद्, सरस्वती-रहस्योपनिषद्, बह्वृचोपनिषद्, कौलोपनिषद् आदि

यदि हम भारतवर्ष के मानचित्र पर देखें तो काश्मीर में शैव परम्परा, दक्षिण भारत में वैष्णव, और मिथिला सहित पूर्वोत्तर भारत में शक्ति की परम्परा पर्याप्त मुखर रही है। मिथिला, बंगाल, आसाम, नेपाल, उडीसा इन क्षेत्रों को हम शाक्तागम का क्षेत्र मान सकते हैं। कालिका-पुराण कामरूप क्षेत्र की रचना है, जिसमें शक्ति-पूजन का सांगोपांग विवेचन हमें प्राप्त है। यहाँ मिथिला की तान्त्रिक परम्परा के आधार पर हम उन सिद्धान्तों की खोज करने का प्रयत्न करेंगे, जिसके आधार पर मिथिला का शाक्तागम स्पष्ट हो सके साथ ही यह भी दृढ़ हो सके कि सम्पूर्ण भारत में शक्ति सम्बन्धी अवधारणा में एकात्मता किस प्रकार प्रवाहित है।

तन्त्रोपनिषद् ग्रन्थों में जब हम शाक्तागम-सिद्धान्त के अन्वेषण का प्रयास करते हैं तो कौलोपनिषद् एक ठोस आधार के रूप में प्रकट होता है। मिथिला की तान्त्रिक परम्परा और अनुश्रुतियाँ इनके सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। हम सब जानते हैं कि मिथिला में कुल-परम्परा विकसित हुई है। यहाँ कुल शब्द का अर्थ परिवार नहीं होकर विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त है और यह तन्त्र की एक विशिष्ट धारा का द्योतक है। इसी विशिष्ट शाक्तागम की परम्परा का ग्रन्थ है कौलोपनिषद्। अतः हम मिथिला के शाक्तागम का आधार ग्रन्थ कौलोपनिषद् को मान सकते हैं।

इस उपनिषद् में शक्ति को ही ब्रह्म माना गया है तथा उन्ही की प्राप्ति को मोक्ष कहा गया है, जिसके बाद पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता है। इस कौलोपनिषद् में कुल की परिभाषा को स्पष्ट किया गया है कि इस परम्परा के प्रवर्तक शिव हैं और त्रिपुरसुन्दरी के शाम्भवी रूप में देवी कुल परम्परा की अधिष्ठात्री हैं। साथ ही, शिव एवं शक्ति में कोई भेद नहीं है। अतः कुलदेशिकों अर्थात् उपासकों के लिए कहा गया है कि वे भीतर से शक्ति के उपासक रहें, बाहर से अर्थात् चन्दन आदि के द्वारा स्वयं को शैव के रूप में प्रकट करें और सभा में तथ्यों के प्रतिपादन करते समय वैष्णव बने रहें-

अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभामध्ये तु वैष्णवाः।

कौलोपनिषद् के दक्षिण भारतीय भाष्यकार भास्करराय ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि- भीतर से शाक्त बनें। बाहर से शैव बनें। समाज में वैष्णव बनें। यद्यपि स्वयं को प्रकट न होने दें यह पहले कह दिया गया है, फिर भी क्या करना चाहिए यह कहते हैं। शक्ति की उपासना करते हैं, यह केवल मन मे रखना चाहिए। यद्यपि शाक्त के लिए कहा गया है कि कुचन्दन (मिट्टी का चन्दन अथना रक्त का चन्दन) से भोंह के बीच में बिन्दु शाक्तों के लिए चन्दन है, तथापि विभूति धारण करना आदि जो शैवों के लिए चिह्न कहे जाते हैं, उसे ही धारण करें क्योंकि शिव एवं शक्ति में कोई भेद नहीं है। कहा भी गया है कि गोपियों के नयन का अमृत के रूप में विष्णु मुझे ही प्राप्त करते हैं। इन वचनों से परम शिव की शक्ति से अभिन्न त्रिपुरसुन्दरी के रूप में प्रकट होकर आकृति धारण करने की बात से सभओं में विष्णु का नाम लेकर विष्णु के उपासक के रूप में ही स्वयं को प्रकट करें। यही तीनों सूत्रों का अर्थ है। इसीलिए विष्णु शिव एवं शक्ति इन तीनों में उत्तरोत्तर अधिक फलदायी तथा अधिक रहस्यात्मक होने की बात रहस्यनामसाहस्र में कहा गया है।

'अन्तः शाक्तः। बहिश्शैवः। लोके वैष्णवः। अप्राकट्येऽपि कर्त्तव्यतामेव विवृणोति। शक्तेरुपास्तिरन्तःकरणैकवेद्या कार्य्या ॥ कुचन्दनेन शाक्तानां भ्रूमध्ये बिन्दुरिष्यते। इति चिह्नानि विदितान्यपि विभूतिधारणादिशैवचिह्नराच्छादितान्येव कार्य्याणि। शिवस्यापि शक्त्यभेदात्। मामेव पौरुषं रूपं गोपिकानयनामृतम्॥ इत्यादिवचनैर्विष्णुस्वरूपस्य परशिवाविरोधत्रिपुरसुन्दरीप्रकटरूपान्तरात्मकतया सभासु विष्णुनामाम्रेडनादिना विष्णूपास्तिमेव प्रकटयेद् इति सूत्रत्रयार्थः। अत एव विष्णुशिवशक्तीनामुत्तरोत्तरफलाधिक्यमुत्तरोत्तररहस्याभिप्रायेणोक्तं रहस्य नामसाहस्रे।

इस प्रकार, कौलोपनिषद् स्पष्ट रूप से विष्णु, शिव एवं शक्ति में शक्ति की उपासना को सबसे अधिक फलदायी मानती है। यहीं मिथिला की शाक्त परम्परा का सिद्धान्त है।

इसी प्रकार मिथिला की शाक्त परम्परा का विवेचन सीतोपनिषद् में भी हुआ है। यहाँ यद्यपि सीतोपनिषद् वैष्णवों की परम्परा की वैखानस शाखा से सम्बन्धित है किन्तु यहाँ भी अन्य शाक्तागमों की तरह देवी सीता को

शब्दब्रह्ममयी और बुद्धिस्वरूपा कहा गया है। शाक्त उपनिषदों में सामान्य रूप से हम दार्शनिक स्तर पर शक्ति को इसी शब्दब्रह्ममय स्वरूप में पाते हैं।

शाक्त तन्त्र के ग्रन्थों में मातृका के रूप में शक्ति की अवधारणा भी रही है। सरस्वती तन्त्र में कहा गया है कि सोलह मातृकाएँ अर्थात् 16 स्वर वर्ण ही वह शक्ति है, जिससे व्यञ्जन वर्ण अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। अतः व्याकरण शास्त्र में जहाँ लृकार का दीर्घ रूप प्रयुक्त नहीं है, वहाँ तन्त्र में इसका भी प्रयोग होता है। यहाँ कहा गया है कि व्यञ्जन वर्ण स्वर के साथ संयोग करने पर ही शब्दब्रह्ममय संसार की सृष्टि करने में सक्षम है। आगे अ से ह तक के सभी वर्णों को भी मातृका कहा गया है, जिनसे एक शाश्वत सृष्टि की उत्पत्ति होती है, नाशवान् संसार के लोप हो जाने पर भी वह शाश्वत सृष्टि रहती है। इसे ही पतञ्जलि, भर्तृहरि आदि ने शब्दब्रह्म कहा है। इस प्रकार शक्ति की अवधारणा शाश्वत संसार की सृष्टि में बीज के रूप में माना गया है।

शक्ति का एक स्वरूप वाक् के रूप में भी तन्त्रों में है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं बैखरी के रूप में वाक् का प्रतिपादन किया गया है। इनमें बैखरी वह वाक् है, जिसे हम सुनते हैं, व्यवहार में लाते हैं, वह नाश होने वाली है, किन्तु परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा शाश्वत वाक् है।

उपासना स्तर के शाक्त तन्त्रों में हम इसी सिद्धान्त का पल्लवन पाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की शक्तियों के रूप में उपास्य देवी की सत्ता का बखान किया गया है तथा उनकी कृपा से सभी सांसारिक एवं पारलौकिक मनोकामनाओं की पूर्ति मानी गयी है। उपासना के स्तर पर शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन आचार्य शंकर ने भी स्पष्ट रूप से है-

यस्यास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः यत्रास्ति मोक्षो नच तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

इसी सिद्धान्त की झलक हम देवी-माहात्म्य दुर्गासप्तशती में भी पाते हैं। यहाँ दो प्रकार के उपसक हैं। राजा सुरथ अपना राज्य वापस चाहते हैं। उनकी उपासना का लक्ष्य है- भोग। किन्तु वैश्य समाधि ज्ञान के आकांक्षी हैं। सुमेधा ऋषि के उपदेश से दोनों एक साथ एक ही विधि से उपासना करते हैं। समाधि वैश्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है, किन्तु राजा सुरथ अपनी भोग की कामना के कारण पुनः जन्म लेकर मन्वन्तर के अधिपति बनते हैं। यही दुर्गा सप्तशती का मूल विनियोग है।

इस सैद्धान्तिक कौलोपनिषद् के अतिरिक्त मिथिला में व्यावहारिक रूप से दशमहाविद्या के रूप में शक्ति की उपासना की परम्परा रही है। काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातङ्गी और कमलात्मिका इन दश रूपों में शक्ति की उपासना की परम्परा है। आज भी जो लोग तन्त्र में दीक्षा लेते हैं, वे इन्हीं में से किसी एक देवी का मन्त्र विधिवत् अपने गुरु से लेते हैं।

मिथिला में गुरु के रूप में माता को प्राथमिकता देना इसकी विषेशता है। यहाँ तान्त्रिक परम्परा में माता से मन्त्र लेना सर्वोत्तम माना गया है। यह भी कहा गया है कि माता से लिये हुए मन्त्र को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे से जो मन्त्र लिये जाते हैं, उन्हें 10 हजार जप कर लेने पर ही उसकी सिद्धि होती है। इसलिए माता को गुरु मानना मिथिलामे सर्वोत्तम कहा गया है। यह भी मान्यता है कि माता की उपासना उस जगन्माता को पाने की पहली और

अंतिम सीढ़ी है। मुझे नहीं पता है कि माता के प्रति इस प्रकार की सैद्धान्तिक भावना भारत के अन्य क्षेत्र में है, भी या नहीं। यदि माता न रहे तो अपने कुल की किसी नारी से ही मन्त्र लेना चाहिए। पिता, पितामह आदि से तान्त्रिक दीक्षा का निषेध किया गया है।

कुमारी-पूजन मिथिला की परम्परा में महत्त्वपूर्ण है। यहाँ दो वर्ष से लेकर 9 वर्ष तक की कुमारी का पूजन करने का विधान है। प्रत्येक वर्ष की कुमारी का अलग अलग नाम दिया गया है तथा उन्हें प्रत्यक्ष देवी के रूप में भोजन, वस्त्र, आदि अर्पित कर उनकी प्रसन्नता से सभी मनोकामनाओं की पूर्ति मानी गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथिला की तन्त्र-परम्परा में नारी को प्रत्यक्ष देवी के रूप में माना गया है। देवी को शम्भु की शक्ति शाम्भवी के रूप में माना गया है तथा उनकी उपासना से अन्य मार्गों की अपेक्षा शीघ्र मोक्ष पाने की बात कही गयी है।

शक्ति अपने नश्वर रूप में बालक को जन्म देती है, जिससे संसार चलता है। नारी के सांसारिक रूप को जहाँ वैष्णव पांचरात्र आगमों में कष्टमय तथा कष्टमय संसार को जन्म देने के कारण अत्यन्त निन्दित कहा गया है। मनुष्य के जन्म की प्रक्रिया को अत्यन्त भयंकर रूप में दिखाया गया है। संसार में मनुष्य के जन्म को पाप कहा गया है, वहीं शाक्तागमों की परम्परा में ऐसा कोई कष्टमय स्वरूप नहीं है। नारी के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों को , नश्वर एवं शाश्वत सृष्टि दोनों को पुण्यमय ही कहा गया है।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला ज्येष्ठ, 2078 का अंक जल-विमर्श विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इसके लिए दिनांक 18 मई, 2021 तक विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं। ज्येष्ठ मास गंगावतरण का मास है। वस्तुतः गंगा हमारी संस्कृति में न केवल नदियों का बल्कि सरोवर, ह्रद, कूप, आदि सभी जलाशयों का पर्याय है। शिव मन्दिर के समक्ष के जलाशय को शिवगंगा कहते हैं। हमारे विभिन्न ग्रन्थों में जल को देवता माना गया है, तथा इसके अधिपति वरुण देव कहे गये हैं। 'धर्मायण' के इस अंक के लिए बौद्ध एवं जैन सहित सनातन परम्परा में जल संरक्षण हेतु जो उपाय कहे गये हैं, उन पर विद्वत्तापूर्ण आलेख 18 मई, 2021 ई. आमन्त्रित हैं।

वर्तमान अंक में व्यवहृत सन्दर्भ की शैली में लिखित सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

श्री महेश प्रसाद पाठक

अद्भुत-रामायण में

मातृशक्ति सीताजी का अद्भुत स्वरुप

रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों में सीता की महिमा के गायन के लिए 'अद्भुत-रामायण' की रचना हुई। यद्यपि इसे भी वाल्मीकि-कृत मानने की परम्परा है, किन्तु इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। नि:सन्देह यह परवर्ती रचना है, किन्तु सीता-तत्त्व पर केन्द्रित होने के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध है। शिव की शक्ति काली के साथ सीता की एकात्मता का प्रतिपादन इसका केन्द्रीय कथ्य है। इस रामायण के आधार पर यहाँ सीता-तत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहरिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥[1]

उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली, क्लेशों का नाश करनेवाली, सम्पूर्ण कल्याणों को करनेवाली श्रीरामचन्द्र की प्रियतमा श्रीसीताजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

जिस प्रकार दुग्ध और दुग्ध की धवलता, अग्नि और अग्नि की दाहकता को एक दूसरे से अलग कर पाना कठिन है, उसी प्रकार शक्तिसम्पन्ना जानकी देवी और शक्तिमान् श्रीराम को पृथक् करना कठिन है। **अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।**[2] सीता का मेरे साथ उसी प्रकार अभिन्न सम्बन्ध है, जिस प्रकार सूर्यदेव और उनकी प्रभा का। श्रीराम का रामत्व श्रीसीताजी से ही प्रकाशित रहता है। **'शक्तिश्च जानकी देवी शक्तिमन्तो हि राघवः।'**[3] शक्तिमान् श्रीराम हैं और शक्तिमती देवी सीता हैं। श्रीचण्डी के समान यही कालरात्रि, योगमाया, महामाया और जगद्धात्री हैं। लोकविमोहिनी हरिनेत्रकृतालया सीताजी शक्ति हैं और सच्चिदानन्द श्रीराम शक्तिमान्।

देवीभागवत का कथन है-

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरुपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥[4]

'श' शक्ति का नाम है और 'क्ति' पराक्रम को कहते हैं, और दोंनो को ही प्रदान करने वाली को 'शक्ति' कहते हैं। केनोपनिषद् के प्रसंग से यह बिल्कुल स्पष्ट होता है कि एक परात्पर शक्ति जिसके सामने वायुदेव, अग्निदेव की अपनी विराट्-शक्ति भी क्षीण पड़ जाती है, वह चिन्मय शक्ति और कोई नहीं बल्कि ब्रह्मस्वरूपा माता भगवती ही हैं। सृष्टि के पूर्व एकमात्र देवी ही थी, जिन्होंने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की। **देवी**

[1] रामचरितमानस, बालकाण्ड. 5
[2] वाल्मीकि-रामायण, 6.118.19.
[3] अद्भुत रामायण, ज्वाला प्रसाद मिश्र (सम्पादक), 24.15
[4] देवीभागवत, 9/2/10

"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathak-mahesh098@gmail.com मो. नं. 9934348196

ह्येकाऽग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्।[5] देवी को कामकला, शृंगारकला भी कहते हैं। इन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का प्राकट्य हुआ है। इन्हीं से समस्त जगत् स्थावर, जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। विश्व में जितने भी चेतन पदार्थ हैं, उन सबों का अस्तित्व शक्ति से ही है। सनातन-धर्मियों में पञ्च-उपासक सम्प्रदायों (गाणपत्य, सौर, शैव, वैष्णव और शाक्त) में शक्ति उपासकों का भी नाम आता है। वस्तुतः ये पञ्चदेव एक ही सर्वभूतात्मा भगवत्-तत्त्व के विभिन्न स्फुरणमात्र कहे जाते हैं। शक्ति की उपासना में शक्तिस्वरूपा भगवती की आराधना का विधान है। एक बार सीतातत्त्व को जानने के जिज्ञासा लिये देवताओं ने ब्रह्मदेव से पूछा- श्री सीताजी कौन है, उनका स्वरुप क्या है? तब प्रजापति कहते हैं-

मूलप्रकृतिरूपत्वात्सा सीता प्रकृतिः स्मृता।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥[6]

प्रणव- अ उ म्, नाद. विन्दु, कला, और कलातीत- इन सातों से सुसज्जित होने के कारण सीता ही प्रणवरुपिणी हैं। सीताजी प्रणव की प्रकृतिस्वरूपा होने के कारण सत्त्व-रजस्तमो-गुणात्मिका प्रकृति भी कही जाती हैं। सीता का ईकार प्रपञ्चबीज है, वही माया भी है। विष्णु संसार के बीज हैं और ईकार माया है। 'सकार' सत्य का नाम हैं और यही अमृत, प्राप्ति और सोम है और 'तकार' महालक्ष्मी का स्वरुप है जो चन्द्रसन्निभ अमृतमय अवयवों एवं रजतमण्डितसौन्दर्य से अलंकृत है। माता सीता की जन्मकथा ने स्वयं ही इसकी पुष्टि की है, ये पृथ्वीस्थ होकर अवतीर्ण हुई हैं। **'भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना'**- ये अपने दूसरे स्वरुप में पृथ्वी से उत्पन्न हुई, प्रसंग है- जब महाराज सीरध्वज जनक यज्ञभूमि में हलाग्र से पृथ्वी (भूमि) की जुताई कर रहे थे। अमरकोश[7] के अनुसार हल के चलाने से पड़ी हुई लकीर को 'सीता' कहा जाता है। सीता माता का विलोपन भी पृथ्वी माता के गर्भ में ही हुआ। भवभूतिकृत उत्तररामचरित में स्वयं माता पृथ्वी से कहतीं हैं- **'नयतु मामात्मनोऽङ्केषु विलयमम्बा।'**[8] हे माता! आप मुझे अपने अंगों में विलीन कर लें।

महर्षि वाल्मीकि विरचित 'अद्भुत-रामायण' में श्रीरामकथा भी अद्भुत एवं अद्वितीय दिखती है। महर्षि द्वारा रचित पच्चीस हजार रामायण इस पृथ्वी पर हैं, जिनमें से 'अद्भुत-रामायण' की कथावस्तु कुछ विशेष ही है। इसमें सीता माता की जन्मकथा आठवें सर्ग में मिलती है- जब दशमुख रावण मनोवाञ्छित फलप्राप्ति हेतु तपस्या करता है, तब ब्रह्मदेव तपस्या से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहते हैं। इसपर कुटिलबुद्धियुक्त रावण कहता है –

आत्मनो दुहिता मोहादत्यर्थं प्रार्थिता भवेत्।
तदा मृत्युर्मम भवेद्यदि कन्या न कांक्षति॥[9]

सुर, असुर, यक्ष, पिशाच, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा मुझे किसी प्रकार न मार सकें, इस वर के अलावे एक अन्य वर यह माँगता हूँ- जब मैं मोहवश अपनी ही कन्या के स्वीकार की इच्छा करुँ, तब मेरी मृत्यु हो। ब्रह्माजी वर देकर चले गये, तो रावण दण्डकारण्य जाकर ऋषियों से कहने लगा- अगर आपको जय करने की इच्छा हो तो 'मुझे जय

[5] बह्वृचोपनिषद्-1.1 [6] (सीतोपनिषत्-1. [7] अमरकोष- 2/9/14
[8] उत्तररामचरितम्, सप्तम अंक, श्लोक संख्या 15 के बाद सीता की उक्ति
[9] अद्भुतरामायण 8/12

दो'। यह कहकर उसने बाण के अग्रभाग को चुभाकर उनके शरीरों से बलपूर्वक रुधिर को निकाल कर एक कलश में रखा। तथा यह कलश मन्दोदरी को देते हुए कहता है- यह रुधिर विषतुल्य है, इस कलश की रक्षा करना। यह कहकर कामीरावण देव, दानव, यक्ष और गन्धर्व की कन्याओं को बलपूर्वक लाकर मन्दार, सह्य, हिमवत्, मेरु और विन्ध्यपर्वत पर विहार करने लगा। इधर मनस्विनी मन्दोदरी रावण के क्रियाकलाप से दुःखी होकर प्राणत्यागने की इच्छा से उसी कलश के रखा विषतुल्य रुधिर का पान कर लिया। फलतः मन्दोदरी को एक प्रकाशमान गर्भ की प्राप्ति हुई। इससे पुनः दुःखित होकर की अपने पति की अनुपस्थिति में मैं कैसे गर्भवती हुई? यह सोचकर तीर्थसेवा के बहाने कुरुजाङ्गल क्षेत्र में जाकर अपने गर्भ का पात कर पृथ्वीतल में गाड़ दिया। कालान्तर में जब जनक सोने की हल से भूमि खोद रहे, उससमय भूमि से एक कन्या प्रकट हुई थी।

स्वर्णलाङ्गलमादाय यज्ञभूमि चखान सः।
स्वर्णलाङ्गलसीतान्तः कन्यैका प्रोत्थिताभवत्॥[10]

इस प्रकार जन्मकथा में थोड़े-बहुत अन्तर रहने पर भी निष्कर्ष यही निकलता है कि माता सीता का जन्म पृथ्वी से ही हुआ था।

अद्भुत-रामायण का सबसे अद्भुत प्रसंग यह है कि जब श्रीराम ने सागर पर सेतु बाँधकर और लंकापुरी जाकर गणों के साथ रावण को मार डाला। समस्तलोग श्रीराम की जयजयकार कर रहे थे। तभी देवीसीता मुनियों से कहतीं हैं - हे मुनियों! रावण वध के प्रति जो कुछ कहा है वह प्रशंसा 'परिहास' कहलाती है। यह सत्य है कि रावण दुराचारी था, लेकिन रावण का वह वध कुछ विशेष प्रशंसा के योग्य नहीं है। यह सुनकर सभी विस्मय होकर सीता की ओर देखने लगे और समस्त वृतान्त कहने का अनुरोध करने लगे। जब श्रीराम-रावण का युद्ध हो रहा था उससमय रावण के द्वारा छोड़ा गया बाण श्रीराम के वक्ष का भेदन करता हुआ पृथ्वी में धँसकर पाताल चला गया। श्रीराम मुर्छित होकर गिर पड़े, सभी ऋषिगण हाहाकार करने लगे। तब जनकनन्दिनी ने अपना विकटरूप धारण कर अट्टहास करते हुए दीर्घजंघा, मुण्डमाला से विभूषित, अस्थियों की किंकिणी पहने महाघोर और विकृतमुख वाली, लपलपाती जिह्वा, जटाजूट से मण्डित, घण्टा-पाश धारण करने वाली, खड्ग-खर्पर धारण किये श्येनी के समान रावण पर निमेष मात्र में ही टूट पड़ी और रावण पक्ष के योद्धाओं का संहार करना प्रारम्भ कर दिया तथा रावण के सहस्रों सिरों को क्षणभार में काट डाला और रावण के कटे हुए मस्तकों को लेकर कन्दुक-क्रीडा करने की इच्छा हुई, तभी महाकालीस्वरूपा सीता के रोमकूपों से शताधिक विकृत आकार वाली प्रभावती, विशालाक्षी, एकवक्त्रा आदि मातृ-शक्तियाँ निकलने लगीं। ये शक्तियाँ धूम्रवर्णा, दीर्घकेशी, पिङ्गाक्ष, स्वलंकृत महिमा से युक्त थी। इनसबों के नृत्य एवं अट्टाहास के साथ-साथ महाघोरा जानकी के पाँवों के शब्द और सिर के हुंकार से तथा निःश्वास की वायु के संघात से भूर्भुवः, स्वः आदि लोकों के साथ पृथ्वी काँपने लगी और जानकी के भार को वहन करने से असमर्थ देवीसीता के चरणाग्र से पीड़ित होकर पृथ्वी पाताल की ओर जाने लगी। प्रलयकालीन दृश्य देखकर सभी देवताओं ने महादेव से प्रार्थना की तब महादेव रणस्थल में आये।

[10] अद्भुत रामायण, 8.37.

जनक्याः पादविन्यासे शवरूपधरो हरः।
आत्मानं स्तम्भयामास धरणीधृति हेतवे॥
सर्वभारसहो देवः सीतापादतले स्थितः।
शवरूपों विरूपाक्षः स्थिता भूद्धरा तदा॥[11]

तब महादेवजी ने शव रूप धारण कर धरती को रोकने के लिये जानकी के पैरों-तले स्थित हो अपने को स्तम्भित किया। और जब शवरूपधारी विरूपाक्ष-देव सीता के पैरों तले स्थित होकर सब भार सहन करने लगे, तब पृथ्वी स्थित हुई। माता सीता के इस रूप को देखकर ब्रह्मदेवादियों ने राक्षसनाशिनी सीता की स्तुति करने लगे। तभी श्रीराम को ब्रह्माजी ने अपने स्पर्श से उनको स्मृति दिलाई और तब श्रीराम उठ खड़े होकर युद्धोन्मत दशा में अपने धनुष-बाण को ग्रहण किया। परन्तु जानकी को वहाँ न देख उनके स्थान पर युद्धस्थल पर चतुर्भुजरूप में लपलपाती जिहवा, खड्ग, खप्पर धारण करनेवाली दिगम्बर रूप में शवरूपी महादेव के हृदय पर स्थित देखा। श्रीराम से ब्रह्माजी ने कहा- आपको विह्वल एवं रावण को क्रोधित देखकर मातासीता ने इस भयंकर मूर्ति का अबलम्बन कर रावण का वध किया। तब श्रीराम ने जनकसुता के तेज को देखकर भूमि में मस्तक झुकाकर परमेश्वरी की सहस्रनामों से स्तुति करने लगे और तब जनकनन्दिनी के सौम्य रूप के दर्शन हुए। राजाराम देवी के उस रुप को स्मरण करते हुए देवी के पार्श्व भाग में स्थित हो गये। श्रीराम से जानकीदेवी कहती हैं-

गृहीतं यन्मया रूपं रावणस्य वधाय हि।
तेन रुपेण राजेन्द्र वसामि मानसोत्तरे॥[12]

रावणवध के निमित्त मैंने जो यह रूप धारण किया, उस रूप को मैं मानस के उत्तरभाग में ही निवास करुँगी। हे राम! प्रकृति के नीलरूप आप हैं, लेकिन रावण से अर्दित होने के कारण लोहितवर्ण के हो गये हैं, अतः मैं नील-लोहित रूप में मैं आपके साथ निवास करुँगी। आपको जिस वर की इच्छा हो, वह मुझसे माँग लें। श्रीराम ने कहा- हे देवीसीते ! तुमने ईश्वर से सम्बन्धित जो यह रूप दिखलाया, वह मेरे हृदय से कभी ना जाय तथा दूसरा वर यह है कि मेरे भ्राता-बन्धु, वानर-भालु, विभीषण आदि मित्र तथा सेना के लोग जो रावण के द्वारा अर्दित हो चुके हैं, वे सभी मुझे पुनः मिल जाँय। देवीसीता के कहा- ऐसा ही होगा। तब देवताओं के द्वारा आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी और श्रीराम ने सबों से विदा लेकर सीतासहित पुष्पक में बैठकर अयोध्या पधार गये। सीतामाता के कालरात्रिस्वरुप का यहाँ जो वर्णन मिलता है, वही वर्णन वाल्मीकीरामायण में भी मिलता है।

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलंकाविनशिनीम्॥[13]

हे रावण ! जिन्हें तुम सीता समझते हो, जो काल तुम्हारे घर अवस्थित है, उन्हें तुम कालरात्रि ही समझो। यह सर्वलंकाविनाशिनी है। कथाक्रम में उपरोक्त विशिष्टता अद्भुत-रामायण के प्रसंगों को सार्थक एवं अद्भुत बनाती है।

[11] अद्भुत रामायण 23. 69-70. [12] अद्भुत रामायण 26.40. [13] वाल्मीकि-रामायण, सुन्दरकाण्ड, 52.34

माता सीता का स्वर्ण से अद्भुत सम्बन्ध –

अयोनिजा सीतामाता पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुई। माता सीता का आविर्भाव उस समय हुआ, जब राजा जनक स्वर्ण-हल से पृथ्वी पर हल चला रहे थे। श्रीराम से विवाह कर अयोध्या आकर अयोध्या स्थित कनक-भवन में विराजती थी। जब श्रीराम का वनगमन हुआ, तो साथ में देवी सीता के साथ भ्राता लक्ष्मण भी थे। सीताहरण के पूर्व मातासीता एक कनकमृग पर आकृष्ट होकर लंका में रावण की बन्दिनी बनती हैं। यह लंका भी सोने की ही बनी हुई थी। कनकनगरी (लंका) से मुक्त होने के बाद स्वर्ण एवं मणियों से खचित पुष्पकविमान में बैठकर पुनः अयोध्या स्थित कनक-भवन में विराजमान हुई। अन्त में जब सीताजी का निर्वासन हुआ और श्रीराम ने अश्वमेधयज्ञ का अनुष्ठान किया, तब सीताजी की अनुपस्थिति में सीताजी की स्वर्ण आकृति बनाकर यज्ञ को सम्पन्न किया। यहाँ तक कि प्रत्येक यज्ञ में जब-जब सीताजी की आवश्यकता होती थी, श्रीरघुनाथजी सीताजी की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे। अन्त में जहाँ से भूमिजा सीतामाता की उत्पत्ति का स्थान था, उसी रत्नगर्भा पृथ्वीदेवी की गोद में स्थान भी पाया। इस प्रकार इस छोटे से सन्दर्भित आख्यानों में माता सीता का स्वर्ण-सम्बन्ध देखा जा सकता है। सीता माता की जीवनलीला में जो भी आख्यान आते हैं, वह निश्चित ही अद्भुत कहलाने योग्य हैं।

***

पाठकीय प्रतिक्रिया, पृ. 2 का शेषांश

सम्बन्धित रचनाओं का भी समावेश है। इस खोई हुई रचना को पुनः प्रकाश में लाकर आदरणीय सम्पादक महोदय नेसनातन साहित्यिक दीपशिखा को संजोने का जो कार्य किया है, वह निश्चय ही प्रसंशनीय है। इसी कड़ी में डा. ममता मिश्र दाश के द्वारा प्रेषित रचना 'श्रीरामपट्टाभिषेक' जो प्रथम बार पाण्डुलिपि से सम्पादित है, शोधपूर्ण जानकारियों से अवगत कराती है। डा. वसंतकुमार म. भट्ट की 'रामकथा के पूर्व संकेत' में रामायणकालीन विभिन्न ऐतिहासिकता की आधार सामग्रियों से परिपोषित कर प्रमाणिक रचना का सृजन किया है। मिथिला साहित्यिक संपदा में डा. लक्ष्मीकान्त विजय ने 'श्रीरामविजय महाकाव्य' से परिचित करवाया है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं की सारगर्भित प्रस्तुति पठनीय है। धर्मायण मात्र एक सामान्य पत्रिका नहीं अपितु इसे शोध पत्रिका कहने में कोई हर्ज नहीं।

महेश प्रसाद पाठक,
"गार्ग्यपुरम", श्रीसाई मन्दिर के पास, बरगण्डा, जिला- गिरिडीह

***

जनकभूमि की परिक्रमा

रवि संगम

जनकभूमि की परिक्रमा जगज्जननी जानकी के प्रति जन-सामान्य की आस्था को प्रकट करती है। यहाँ वर्तमान में प्रचलित जनकपुर परिक्रमा पथ का विवरण दिया गया है।

मिथिला-माहात्म्य में तीन परिक्रमा मार्गों का वर्णन आया है. लघुपरिक्रमा, मध्यम परिक्रमा एवं बृहत् परिक्रमा। लघु परिक्रमा में केवल जनकपुर धाम की परिक्रमा होती है। मध्यम परिक्रमा में राजा जनक की पूरी राजधानी की परिक्रमा मानी जाती है तथा बृहत् परिक्रमा में सम्पूर्ण मिथिला की परिक्रमा होती है।

मध्यम परिक्रमा

वर्तमान में 'मध्यम परिक्रमा' फरवरी-मार्च महीने में बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। हजारों की संख्या में साधु-संतों एवं श्रद्धालुओं का पूरा दल भजन-कीर्तन करते हुए पैदल यात्रा करते हैं। यह परिक्रमा 5 दिनों में पूर्ण होती है। 1880 ई. के आसपास प्रकाशित पुस्तक 'मिथिलातीर्थप्रकाश' के अनुसार मध्यम परिक्रमा कल्याणेश्वर से आरम्भ होती थी तथा गिरिजास्थान, जलेश्वर, क्षीरेश्वर एवं धनुषा होती हुई पुनः कल्याणेश्वर में सम्पन्न होती थी। उक्त पुस्तक के लेखक ने अपने समय में भी इसके प्रचलन की बात कही है।

वर्तमान में मिथिला परिक्रमा फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की पहला तिथि से आरम्भ होकर पूर्णिमा तिथि तक 15 दिनों की होती है। नेपाल स्थित धनुषा जिला के मिथिलाविहारी मन्दिर, कचूरी में स्थापित राम-जानकी का रथ रामजानकी मन्दिर,

पेशा से पत्रकार एवं बिहार में पर्यटन-सूचना सामग्रियों के प्रामाणिक लेखक।

जनकपुर तक लाया जाता है. रामजानकी मन्दिर, जनकपुर के परिसर में अन्य सभी मन्दिर के रथ भी लाये जाते हैं तथा वहीं से यह यात्रा प्रारम्भ होती है। नेपाल एवं भारत के विभिन्न मन्दिर पुण्यक्षेत्रों से गुजरती हुई यह यात्रा फाल्गुन की पूर्णिमा को जनकपुर में समाप्त होती है. वर्तमान में परिक्रमा मार्ग के पड़ावों में 'चार पड़ाव' बिहार में हैं।

मिथिला परिक्रमा में मिथिला बिहारीजी का डोला फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष के प्रथम दिन नेपाल में जनकपुर कचुरी धाम से शुरू होती है. वहां से चलकर रत्नसागर में भोजन-विश्राम कर, जानकी मन्दिर में पूजा करते हुए कचूरी स्थित हनुमानगढी (जनकपुर से 3 कि.मी.) में रात्रि-विश्राम किया जाता है।

डोली के अंदर श्रीसीताजी की प्रतिमा

अगले दिन भगवानजी की आरती के बाद हरिणे ग्राम (भारत -नेपाल सीमा पर स्थित) में बालभोग विश्राम कर हरलाखी होते हुए वासोपट्टी-हरलाखी मार्ग पर वासोपट्टी से 2 कि.मी. की दूरी पर स्थित कल्याणेश्वर स्थान महादेव मन्दिर, कलना पहुंचती है। वहां से अगले दिन गिरिजा-स्थान, फुलहर पहुंचती है।

अगले दिन नेपाल के मटिहानी पहुंचती है। फिर अगले दिन नेपाल स्थित जलेश्वर स्थान, मरई स्थान, धुर्वकुंड, कंचनवन, पर्वता (परवत्ता) धनुषाग्राम, खतोखार व औराही होते हुए

पुनः बिहार के हरलाखी प्रखंड के करुणा स्थान पहुंचती है. यह स्थान हरलाखी व विशौल से 5 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

वहां से अगले दिन कल्याणेश्वर स्थान में संकल्प के साथ परिक्रमा पूरा करके विश्वामित्र आश्रम विशौल में विश्राम किया जाता है।

वहां से परिक्रमा यात्रा नेपाल के जनकपुर धाम के पांचकोशी परिक्रमा किया जाता है. पंचकोशी परिक्रमा के साथ 15 दिवसीय यह यात्रा संपन्न हो जाती है. 15 दिनों में 15 पवित्र देवस्थलों का दर्शन कर भक्तजन पुण्यलाभ अर्जित करते हैं।

आस्था है कि मिथिला परिक्रमा में मिथिला बिहारी का डोला के साथ श्रद्धालु 84 लाख योनियों से उद्धार पाने के लिए 84 कोस की मिथिला परिक्रमा करते हैं।

***

परिक्रमा पथ में कलश-यात्रा की मनोहारी छवि

विश्वामित्र आश्रम, बिसौल में विश्वामित्र की प्रतिमा

कल्याणेश्वर शिवमन्दिर, कलना का बाहरी दृश्य

वेङ्कट कवि की कृति 'सुन्दरेश्वरजाये'

(तमिल् पाठ से संशोधित सम्पादित)[1]

श्री रवि ओझा

यह सनातन धर्म की चरम विशेषता है कि दक्षिण एवं उत्तर भारत की परम्परा एक-दूसरे के साथ भावात्मक स्तर पर इतना जुड़ा हुआ है कि उसे द्राविड़ एवं औदीच्य में बाँट नहीं सकते हैं। दक्षिण के वेंकट कवि की रचनाओं में हम मीनाक्षी के साथ राधा, सीता, सरस्वती, हनुमान् आदि की स्तुति पाते हैं। 'सुन्दरजाये' रचना में तो गायक जब समस्त पदों में से पहले पद को अलग कर 'सुन्दरि जाये' के रूप में सम्बोधन में गाते हैं तो एक पंक्ति दो प्रकार के अर्थ व्यक्त करने लगते हैं, जिसमें उत्तर एक दक्षिण का भेद मिट जाता है। यही इस रचना की विशेषता है।

प्रौद्यौगिकी अध्ययन से जुड़े एक छात्र ने इस वैशिष्ट्य को पहचान कर एक आलेख प्रेषित किया है। हम इनके उज्ज्वल लेखकीय भविष्य की कामना करते हैं।

वेङ्कट कवि भारत के महत्त्वपूर्ण-गायनविद्वानों में से एक माने जाते हैं। शास्त्र आधारित सङ्गीतज्ञों, गायकों, वादकों और नर्तकों जिनको आजकल लोग कर्णाटकीय शास्त्रीय कलाकार (Carnatic-artist) कहते हैं, के बीच इनको गायन-विद्वत्ता केलिये अत्यधिक यश प्राप्त हुआ। इनका जन्म अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सुब्बु-कुट्टि-ऐयर(पिता) और वेङ्कम्मा (माता) के यहाँ, तमिल्-नाडु के मन्नार्गुडि क्षेत्र में हुआ। कुछ-समय बाद इनके-परिवार ने ऊत्तुक्काडु क्षेत्र में निवास किया; यहीं इन्होंने जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग व्यतीत किया, इसलिए इनके नाम में इस क्षेत्र का नाम भी जुड़ गया। इनकी अधिकतर कृतियाँ तमिल्-भाषा में और अनेक-कृतियाँ संस्कृत में भी प्राप्त होती हैं। कुछ कृतियाँ तो मराठी में भी प्राप्त हैं। वर्तमान में पाँच-सौ कुछ कृतियाँ प्राप्त हैं। इनकी अधिकतर रचनायें वैष्णव ही मिलतीं, परन्तु शाक्त, आदि मतों पर भी प्रचुर कृतियाँ मिलती। वेङ्कट कवि के जीवन-चरित्र के सबसे अग्रणी स्रोत इनकी अपनी कृतियाँ और इनके भाई के वंशज हैं।

वेङ्कट कवि केवल गायन-शास्त्र के निपुण-मर्मज्ञ ही नहीं अपितु एक अद्भुत-कृष्णभक्त भी रह चुकें।[2] गायन-सीखने की जिज्ञासा में, परन्तु गुरु-के अभाव में, इन्होंने अपनी माता की आज्ञा से, ऊत्तुक्काडु के कालिङ्गनर्तन मन्दिर जाकर, श्रीकालियदमन की शरण ली, जिसके बाद उन भक्तवत्सल ने प्रकट होकर इनपर कृपा करते-हुये इनको अपना-शिष्य बनाया। 'गुरुपदारविन्दकोमळम्' कृति में इन्होंने भगवान् का गुरु स्वरूप में स्तवन-किया। इनकी प्रसिद्ध कृति 'कालिङ्ग नर्तन तिल्लाना' में इन्होंने कालिय पर नर्तन करते और मुरली बजाते भगवान् का स्तवन किया:

मदभुजङ्ग-शिर-पादयुग पाणिधृत-मधुनिनाद-वेणुरव

इसी-तरह इन्होंने अन्य बहुत-सी कृतियों में भगवान्-के कालियदमन-स्वरूप का स्मरण-किया :

कल्याण-गुण-करुणालवाल काळियफण-पदलोल

1 भक्त-कवि ऊत्तक्काड-वेट-सब्बैयर जी (श्री भार्गवी सुब्रमण्यन् जी के अनुग्रह से और उनके द्वारा निर्मित venkatakavi.org की मदद से प्रस्तुत।

2 इस लेख में इनकी भक्ति के विषय को आधार दिया गया, इनकी गायन-निपुणता को नहीं।

जन्म- लखनऊ, उत्तर-प्रदेश, मदन मोहन मालवीय प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में बी॰ टेक्॰ द्वितीय वर्ष, स्वेच्छा से संस्कृति के अध्ययन में निरत।

सुन्दर नन्दकुमार कृति; राग- मध्यमावति; ताल- आदि

यहाँ पर भक्त-कवि ने श्रीकृष्ण को कल्याण, गुणों और करुणा का वरुणालय पुकारा। उक्त कृतिरत्न को इन्होंने श्रीगोपाल की नित्य-पूजा के-लिये रचा-रहा। एक-और प्रसिद्ध-कृति 'माडु मेय्कुम्' में इन्होंने यशोदा-कृष्ण के संवाद का वर्णन किया, जिसमें माता के बार-बार मना करने पर भी कन्हैया बाहर जाने का हठ करते। ये उन भक्तों में से रहें जो कभी भी कहीं भी गान-भक्ति में लगे-रहते, इसीलिये इनकी-कृतियाँ बहुत अधिक सङ्ख्या में मिलती और उनमें से कई केवल परम्परा से आगे बढ़ रहीं और बहुत कम ही कृतियों में इन्होंने मुद्रा का प्रयोग किया। इन्होंने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया बहुत-सा समय तीर्थयात्रा करते बिताया:

मङ्गळकर-निष्कळङ्क-दक्षिणमन्दाकिनीकावेरी-मध्यस्थं.....रङ्गनाथमनिशं वन्दे

'रङ्गनाथमनिशं वन्दे' कृति ; राग- गम्भीरनाट्टै ; ताल- आदि

यहाँ भक्त-कवि श्रीरङ्गम्-क्षेत्र का वर्णन-करते-हुये उसे पुण्यसलिला-कावेरी के बीचों-बीच स्थित, मङ्गलकारी और कलङ्क-रहित बताया और उसीके मध्यस्थ श्रीरङ्गनाथ की वन्दना करी। इसी तरह से मन्नार्गुडि, ऊत्तुक्काडु, सिक्किल, तिरुवारूर्, चिदम्बरम्, उडुपि, चेन्नै, तिरुच्चिराप्पळ्ळि, कुट्टनूर्, तिरुकण्णपुरम्, काञ्ची, मदुरै, पण्ढरपुर आदि क्षेत्रों की कृतियाँ भी मिलतीं। इन्होंने राधाभक्ति-का भी प्रचार किया:

श्रीहरि-प्रेमाखण्डमण्डलसाम्राज्य-अधिपते राधे रसयुत-रासविलासे

'माधवहृदिखेलिनि' कृति; राग- कल्याणि; ताल- आदि

यहाँ रासेश्वरी-राधा को इन्होंने श्रीहरि के प्रेम-रूपी साम्राज्य की अधिनायिका पुकारा। इन्होंने कई कृतियों में रासलीला-का वर्णन किया और राधा-कृष्ण की युगल उपासना भी की:

अनुरागज-आलापमृदुभाषित-अनङ्गद्युतिरासविहारि-सह-वृषभानुसुकुमारि

राग- केदारगौळ; ताल- खण्डमठ्य

इस कृति में भक्त-कवि ने रासविहारी-को मधुर अनुराग-भरी बातें करनेवाला और काम-के तेज से सम्पन्न बताया और फिर उन्हीं श्रीकृष्ण को साथ ली-हुई बरसाने-की राजकुमारी श्रीराधा को पुकारा। राधा-कृष्ण की एवम् अन्य-भगवत्स्वरूपों की भक्ति इन्होंने समान-भाव से करी:

राम- राघव- केशव- रघुकुलनन्दन- मैथिलीरमण- कृष्ण- गोकुलवैभव- नन्दनन्दन- काळियनटन- सोमशेखर-सुन्दरनटन- चिदम्बर-शैलजारमण- बाहुलेय- शिखिवाह- दयापर- पाहि- इति विधनाम निजहरि -भजनामृत-परमानन्द-भागवत-सन्त-चरणरेणुं निरन्तरं वहाम्यहम्

'भजनामृत' कृति ; राग- नाट्टै ; ताल- आदि

संसार-रूपी भय से रक्षणार्थ "राम! राघव! केशव! सीतरमण" और "कृष्ण! गोकुल-के वैभव! नन्दनन्दन! कालिय-नाग पर नाचनेवाले!" पुकारनेवाले वैष्णवों, "चन्द्रशेखर! सुन्दरतः नाचनेवाले! चिदम्बर! पार्वतीरमण!" पुकारनेवाले शैवों और "बाहुलेय! मयूरवाहन! परम-दयालो!" पुकारनेवाले कौमारों को एक-साथ यहाँ पर भक्त-कवि ने, बिना किसी भेद-भाव के, परमानन्द-स्वरूप बताया और उन-सभी भजन-करनेवाले भागवतों की उपासना-करी। गान-भक्ति करनेवाले इन्होंने गान-साम्राज्ञी ब्रह्माणी-सरस्वती की भी उपासना-करी :

सरसिजभव-जाये सरस्वति नमोऽस्तु ते

राग- कल्याणि ; ताल- आदि

ऐसे ही श्रीविनायक के-लिये भी इन्होंने बहुत-सी कृतियाँ रची : **आनन्दनर्तन-गणपतिं भावये**

राग- नाट्टै ; ताल- आदि

शक्ति-उपासना भी इन्होंने बड़े-भाव से करी; जैसे श्रीहरि-को इन्होंने कई रूपों में भजा वैसे ही शक्ति को भी कई-रूपों में भजा। श्रीविद्या-उपासना पर आधारित कृतियों (नवावरण कृतियों में इन्होंने प्रारम्भ में एक-कृति से विनायक की उपासना करी और फिर दूसरी कृति में श्रीकामाक्षी का ध्यान किया; इसके पश्चात् क्रम से हर-एक कृति में श्रीचक्र के नौ आवरणों को स्मरण करते हुये श्रीललिता का कीर्तन किया, और अन्त में अपनी वाञ्छा को भी एक कृति के रूप में भगवती के समक्ष प्रस्तुत किया। श्रीविद्या में इनकी पटुता सुदृश्य है। श्रीयन्त्र के हर (नौ) आवरणों की हर (नौ) अधिष्ठात्री ईश्वरी के रूप में श्रीललिता का भक्तिमय स्तवन क्रमशः इन नौ आवरण कृतियों में किया। जिस चक्र-पर कृति आधारित होती, उसी चक्र में स्थित देवियों को भी श्रीललिता-का स्वरूप कहकर पुकारा:

शङ्करि श्रीराजराजेश्वरि सर्वसिद्धिप्रदायकचक्रेश्वरि कामेश्वर-वामेश्वरि भगमालिनि।

'शङ्करि' कृति; राग- मध्यमावति; ताल- आदि

यहाँ कामेश्वरप्रिया राजराजेश्वरी शङ्करी को श्रीयन्त्र के आठवे आवरण सर्वसिद्धिप्रदायक चक्र की (अधिष्ठात्री) ईश्वरी (त्रिपुराम्बा) के रूप में और इसी चक्र में स्थित तीन अतिरहस्य योगिनियों अथवा पन्द्रह नित्य-देवियों में से एक भगमालिनी के रूप में पुकारा। इन्होंने राधा-कृष्ण की तरह शिव-शक्ति की युगल-उपासना भी करी:

निरुपमाधिक चिदम्बर-नर्तन-सह-नर्तन-पदयुगळे मामव राजराजेश्वरि

'राजराजेश्वरि' कृति, राग- कन्नड, ताल- आदि

यहाँ चिदम्बर शिव को उपमारहित नृत्य करनेवाला बताया और श्रीराजराजेश्वरी को उनके साथ नृत्य करनेवाली के रूप में रक्षणार्थ पुकारा। इन्होंने श्रीविद्या उपासना भी श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये करी:

हलधरानुजं प्राप्तुं वयमागताः देहि देवि अखिलाण्डेश्वरि गुरुगुहजननि

'हलधरानुज' कृति; राग- मणिरङ्गु ; ताल- आदि

यहाँ भक्त-कवि बलरामानुज-को प्राप्त करने के-लिये विश्वेश्वरी-स्कन्दमाता के पास जा रहें। इन्होंने श्रीललिता की उपासना में भी कई बार श्रीकृष्ण-का वर्णन किया:

कुवलयदळ-नवनीलशरीर-गोविन्द-सोदरि

'सकळलोकनायिके' कृति; राग- आरभि; ताल- आदि

यहाँ इन्होंने गोविन्द-की सौन्दर्य-माधुरि को ध्यान में रखते-हुये उनको कमल-दल के-समान नीला नवयुवक बताया और फिर श्रीललिता-को उनकी-बहिन पुकारा। इसी तरह इन्होंने अन्यान्य-भगवद्विग्रह की उपासना में भी हरि स्मरण-किया:

कृष्ण-वेणुगान-राग-ताळ-भाव-मोह-रास-गीत-रसिके

'गीतरसिके' कृति ; राग- कल्याणि ; ताल- रूपक

यहाँ श्रीसरस्वती-की स्तुति में इन्होंने उनको श्रीकृष्ण-के मनमोहन मुरली-वादन और गान की रसिका पुकारा। इसी तरह

श्रीस्कन्द-उपासना का प्रचार करते समय भी इन्होंने उनको नन्दनन्दन-की बहिन का बेटा पुकारा :

व्रजराज-तनय-भागिनेयं.....सुब्रह्मण्यं भज भज मानस

'गजमुख-अनुज' कृति; राग- केदार ; ताल- आदि

ऐसे ही कई-बार इन्होंने श्रीहनूमान्-की उपासना में श्रीराम-का वर्णन-किया:

भुवनपाल-सत्यपोषक-रघुपुङ्गव-वर-प्रियकरदूत

'पवनकुमार' कृति ; राग- वसन्त ; ताल- आदि

यहाँ भुवनेश्वर-राघव की मर्यादा को ध्यान में रखते-हुये उनको सत्य-की पुष्टि-करनेवाला बताया और फिर हनूमान्-जी को उनका प्रियकर-दूत पुकारा। ये व्यास, वाल्मीकि, जयदेव, सभी-आल्वारों सहित प्रसिद्ध-वैष्णवों, सभी नायन्मारों (नायनारों सहित प्रसिद्ध शैवों, अरुणगिरिनाथ-सहित प्रसिद्ध-कौमारों, रामायण महाभारत पुराणों आदि के महान्-व्यक्तियों और अन्यान्य भक्तों से प्रभावित रह चुकें :

शिव-हरि-शरवणभव-गुह-भजन-निरन्तर-मालालङ्कृत-शोभ-वागीश-शिवपादहृदयसुत-मणिवाचक-सुन्दर - डिण्डिम-कविराज-मधुरकवि-राजरामानुज-कुलशेखर-विष्णुचित्त-परकाल-पुरन्दर-तुळसिदास-चरणारविन्दधूळि-हरि-शिव-गुह-भजनामृत-परमानन्द-भागवत-सन्त-चरणरेणुं निरन्तरं वहाम्यहम्

'भजनामृत' कृति ; राग- नाट्टै ; ताल- आदि

यहाँ-पर भक्त-कवि ने वागीश, सम्बन्ध स्वामी, सुन्दर, आदि नायन्मारों सहित मणिवाचक, आदि शैवों, अरुणगिरिनाथ, आदि कौमारों और मधुरकवि, कुलशेखर, विष्णुचित्त, परकाल, आदि आल्वारों सहित कविराज, रामानुजाचार्य, पुरन्दरदास, तुलसीदास, आदि वैष्णवों, और सभी भजन-करनेवाले परमानन्द-स्वरूप भागवत-सन्तों की चरण-धूली का सेवन-किया। उक्त-कृतिरत्न में इन्होंने भागवतों-की उपासना-करी। इन्होंने अपनी-कृतियों में भक्त और भगवान् का कई-बार एक-साथ भी स्मरण-किया :

दैत्यवर्य-मनुकुटुम्ब-वेनजनकाङ्ग-ध्रुव-मुचुकुन्द-विदेहकादि-रघु-नाहुष-मान्धातानु-शन्तनु-बलि रन्तिदेव-पिप्पलाद-भूरिषेण-दिलीप-उत्तङ्क-देवल-सारस्वत-सगर-पराशर-विजय-विदुर-अमूर्तरयाम्बरीष-विभीषण-अतिशयमहिमोत्तम-चित्तभाव-मारुततनय-प्रमुखादि-भागवत-विनुत-निरन्तर

'अगणितमहिमाद्भुतलील' कृति; राग- गौळ; ताल आदि

यहाँ भक्त कवि ने प्रह्लाद, मनु, अङ्ग, ध्रुव, मुचुकुन्द, विदेह, रघु, ययाति, मान्धाता, अनु, शन्तनु, बलि, रन्तिदेव, पिप्पलाद, भूरिषेण, दिलीप, उत्तङ्क, देवल, सारस्वत, सगर, पराशर, विजय, विदुर, अमूर्तरय, अम्बरीष,विभीषण, हनूमान्, आदि प्रमुख भागवतों के द्वारा निरन्तर विनुत पुकारा। इन्होंने कृति रत्न आळावदेन्नाळो में मणिवाचक सहित सभी नायन्मारों का स्मरण किया। इन्होंने अन्य कुछ-कृतियों में भी जयदेव, उद्धव, वाल्मीकि, शुकदेव, आदि का एवम् अपने श्रीगुरु का स्तवन किया। कृष्ण और शक्ति उपासना के अलावा इन्होंने प्रचुर कृतियों में भक्त स्वरूप भगवान् हनूमान् की भी उपासना की

भक्तभागधेय आञ्जनेय , राग- मध्यमावति ; ताल-

आदि इन्होंने भागवत, उसकेमाहात्म्य, रामायण, महाभारत और प्रणवोपदेष्टा-स्कन्द की लीलाओं एवम् अन्य-भक्तों की कथाओं पर भी आधारित कृतियाँ रची। 'श्रीराम जयमे जयम्' कृति में इन्होंने रामायण-का सक्षेप में वर्णन-किया। इनकी कतिपय-कृतियों से पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं और पात्रों का भी स्मरण-होता:

अनलशाल-अन्तर्गत-विघ्नयन्त्र-हरणदन्त सुन्दर.... गजमुख विषङ्गभीतिकर.....कोटिकोटि-हेरम्ब-नायक दयाकर आमोद-प्रमोद-सेना-नायक

'श्रीगणेश्वर' कृति; राग- षण्मुखप्रिय; ताल- आदि

यहाँ ब्रह्माण्ड-पुराण के ललितोपाख्यान में वर्णित महागणपति-की लीला का स्मरण होता: आमोद और प्रमोद से युक्त कोटि-कोटि हेरम्बों की सेना के नायक, सुन्दर और दयालु गजमुख ने अग्निशाल-के अन्दर छिपे-हुये भण्डासुरबन्धु-विशुक्र द्वारा बनाये गये विघ्न-यन्त्र को दाँतों-से हर-लिया और भण्डासुर के भाई विषङ्ग को भीत-कर-दिया। इस तरह इन्होंने अपना-जीवन तीर्थ-सेवन, सन्त-सेवा, शास्त्र अध्ययन और भगवत्परायण-होकर भजन-कीर्तन में व्यतीत-किया।

देवी की स्तुति सुन्दरेश्वरजाये

इसी वेङ्कट कवि की एक महत्त्वपूर्ण रचना है- सुन्दरजाये। इसमें देवी की स्तुति की गयी है, किन्तु तमिल लिपि में इसका जो लेखन हुआ है, वह भाषा की दृष्टि से विकृत हो गया है। इसी विकृत पाठ का उपयोग विभिन्न वेबसाइट पर किया जाता रहा है। हमने संस्कृत भाषा की शब्दावली को ध्यान में रखकर इसके पाठ को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

रागम्- नवरसकन्नड। ताळम्- आदि।

॥पल्लवि॥

सुन्दरेश्वरजाये सुन्दरनाग-आननपुरालये[3] स्वर्णसरसिरुहसरसीतटशोभनमणिमण्डपसदने

आशय- हे (मदुरै-क्षेत्र में अपने-प्रिय) सुन्दरेश्वर (शिव)की प्रिये मीनाक्षि! हे सुन्दर हालास्य-नगर मदुरै) में निवास करनेवाली (मीनाक्षि)! हे (मदुरै-में) स्वर्ण-कमलों के सरोवर के तट के-लिये शोभा-स्वरूप (अपने-मन्दिर में), मणि के-बने मण्डप पर सदा रहनेवाली (मीनाक्षि)!

॥अनुपल्लवि॥

नन्दिते नतनरवरमुनिगणनवरसकन्नडस्थितिगीते[4] बन्धूकातिशोणाधरमृदुभाषिते मणिभूषिते मन्दाकिनीजटामकुटशिवे[5] मलयध्वजपाण्ड्यसुतनये गन्धारुणकमलायतनयने करुणारसपरिपूरितवदने सुन्दरेश्वरजाये

वेङ्कट-कवि की कुछ-ही कृतियों में कृति के राग का नाम लिखा मिलता; यह कृति उनमें से एक यह कृति है।

पाद-टिप्पणी- पाण्डुलिपि में जो पाठ है उसे मूल में रखा गया है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से जो पाठ अपेक्षाकृत सम्यक् प्रतीत होते हैं, उन्हें हाँ पाठान्तर के रूप में संकलित का गया है।

3 **सुन्दरि नाग-आननपुरालये** अर्थात् हे सुन्दरि! हे हालास्य-नगर में निवास करनेवाली (मीनाक्षि)!

4 **नन्दितनतनरवरमुनिगणनवरसकन्नडस्थितिगीते** अर्थात् हे नवरसकन्नड (राग) में स्थित, (अपने-द्वारा) नन्दित नतमस्तक) श्रेष्ठ-नों (और) मुनियों के द्वारा गाये-गये) गीतों (से तृप्त-होने) वाली!

5 **मन्दाकिनि जटामकुटशिवे** अर्थात् हे मन्दाकिनी-स्वरूपे! हे जटा रूपी मुकुट (से शोभित-होने) वाली शिवे!

आशय- हे नन्दिते! हे नवरसकन्नड (राग) में स्थित, (नमन करने के लिये) नतमस्तक) श्रेष्ठ-नों (और) मुनियों के द्वारा गाये-गये) गीतों (से आह्लादित होने वाली!' हे बन्धूक (पुष्प) के समान अति रक्त (रङ्ग वाले अपने अधर के द्वारा बोले-गये) वाली! हे मणि के लिये आभूषण-स्वरूप! हे मन्दाकिनी श्रीगङ्गा से युक्त जटा रूपी मुकुट (से सुशोभित होने) वाली शिवे! हे मलयध्वज (पाण्ड्य-राजा) की (प्रिय) सुपुत्रि मदुरै-की नायिका मीनाक्षि! हे गन्धमय अरुण कमल के समान (सुन्दर), लोलन करते हुये नयनोंवाली! हे करुणारस से परिपूर्ण वदन वाली! हे (मदुरै-क्षेत्र में) सुन्दरेश्वर की प्रिये मीनाक्षि!

यहाँ ध्यातव्य है कि भगवती-ललिता का सौन्दर्य इतना-अनुपम है कि उनको अलङ्कारों और रागों की आवश्यकता नहीं, बल्कि अलङ्कारों और रागों को अपना-प्रभाव बचाये रखने के लिये इन सर्वसुन्दरी की आवश्यकता है।

॥ चरणम्॥

सुन्दरवरदराजप्रियकरसोदरि[6] मदुरानिधे[7] सोमकळानिखिलपराभवसुमुखसुदळसन्निधे[8] वन्दितमणिवाचक शिवपादतनयवागीशादयतवपादपद्मकरन्दमधुपकुलनाथशिवे परमोद्भवे सुन्दरेश्वरजाये

आशय- हे (काञ्चीपुरी में) सुन्दर वरदराजन्(विष्णु का प्रिय करनेवाली (उनकी) बहिनि कामाक्षि!' हे (दक्षिण के लिये मथुरा-स्वरूपा) मदुरा-की निधि (मीनाक्षि)! हे चन्द्रकला को पूर्णतः पराभूत करने वाली मुस्कान से सम्पन्न रहने) वाले, (और) कमल के समान (कोमल, सुन्दर) मुख वाले सुंदरेश्वर की सन्निधि में रहनेवाली (मदुरै-की नायिका मीनाक्षि)! हे (अपने द्वारा) सम्मानित मणिवाचक शिवपाद के सत्सम्बन्ध की स्वामिनी, वागीश आदि शिवभक्तों और), अपने चरण रूपी कमल की मकरन्द (रूपी धूलि) के लिये भरे स्वरूप (अपने भक्तों) के कुलों की नायिका शिवे! हे परम-कारण स्वरूपे! हे (मदुरै क्षेत्र में) सुन्दरेश्वर की प्रिये मीनाक्षि!

सूचना- प्रायः पल्लवि और चरणम् दोनों में ही कहीं भी मुझे 'सुन्दरि' नहीं प्राप्त हुआ, परन्तु पाठान्तर-में अपने अनुमान को भी लिख दिया, क्योंकि वो भी सही जान-पड़ता। अनुपल्लवि में सभी जगह मुझे 'नन्दित' और 'नन्दिते' की जगह नन्दिता' ही प्राप्त-हुआ, परन्तु केवल अपने अनुमानों को यहाँ लिखा, क्योंकि वे अधिक-सही जान-पड़ते। सभी जगह मुझे 'मन्दाकिनि' ही प्राप्त हुआ, परन्तु पाठ में अपने अनुमान को लिखा, क्योंकि वो अधिक-सही जान-पड़ता। चरणम् में कहीं भी मुझे 'सुमुखि' नहीं प्राप्त हुआ, परन्तु पाठान्तर-में अपने अनुमान को भी लिखा, क्योंकि वो भी सही जान-पड़ता।

***

6 **सुन्दरि वरदराजप्रियकरसोदरि** अर्थात् हे सुन्दरि! हे (काञ्ची-पुरी में) वरदराजन् (विष्णु) का प्रिय करनेवाली (उनकी) बहन (कामाक्षि)!

7 **मधुरानिधे; मथुरानिधे** अर्थात् हे (श्रीकृष्ण को पाने के लिये गोपियों के द्वारा आराधित) मथुरा के लिये निधि-स्वरूपा (श्रीकात्यायनि)!

8 **सोमकळानिखिलपराभवसुमुखि सुदळसन्निधे** अर्थात् हे चन्द्रकला-को पूर्णतः पराभूत-करने(वाली मुस्कान से सम्पन्न) मुख वाली! हे (मदुरै-में) सुन्दर (स्वर्णिम) दलों वाले कमलों की सन्निधि में रहनेवाली (मीनाक्षि)!

श्री जगन्नाथ करंजे*

शिव एवं शक्ति अर्थात् ब्रह्म एवं उनकी शक्ति के समन्वय की गाथा सम्पूर्ण भारत में आसेतु-हिमाचल समान है। अत: यदि काश्मीर के अद्वैत शैव दर्शन में हम इस भाव को पाते हैं तो सुदूर दक्षिण के शक्तिविशिष्टाद्वैत (वीरशैव) दर्शन में भी इसी एकात्म रूप की झलक हमें मिलती है। वीरशैव परम्परा में रेणुकाचार्य के द्वारा प्रवर्तित शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में शक्ति के स्वरूप तथा शिव के साथ सम्बन्ध पर विमर्श यहाँ प्रस्तुत है।

शक्ति को विशिष्ट रूप से उपासन करने के कई पंथ हैं, जिसमें से शक्ति विशिष्टाद्वैत (वीरशैव) प्रमुख है। इसके अनुसार त्रिगुणात्मक माया तथा विशिष्टाद्वैत के अंशीभाव दोनों मिल के शक्ति विशिष्टाद्वैत कहलाती है, ऐसे वीरशैव मत के दार्शनिक प्रतिपादन है। शक्ति विशिष्टाद्वैत का तात्पर्य या अर्थ संस्कृत में यह है की **"शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती-ताभ्यां विशिष्टो जीवेशो, तयो: अद्वैतं शक्ति विशिष्टाद्वैतं"** दो प्रकार के श्री का या यह शक्तियों के जुड़ने से जीव ब्रह्म का अद्वैत या सामराश्य ही शक्ति विशिष्टाद्वैत है। अपने शिवाद्वैतवाद को स्पष्ट करते हुए शक्ति विशिष्टाद्वैत कहता है - "सब कुछ शिव है, यह सब शिव है, यह श्रुति का कथन है", वीरशैव दर्शन में शिव व शक्ति का आविर्भाव सम्बन्ध बताया गया है इसके अनुसार :-

समस्तजगदण्डानां सर्वस्थित्यन्तकारणम्।
विमर्शो भाषते यत्र तद् भाजनमिहोच्यते॥[1]

अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति लय की कारणभूत विमर्श शक्ति जिस परशिव परब्रह्म में प्रकाशित रहती है, उस परशिव को 'भाजन' कहते हैं। अन्य श्लोक में शक्ति को स्पष्ट करते हुए विश्वभाजन का वर्णन आता है। इसके अनुसार शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है।

[1] सिद्धान्तशिखामणि, 20.35, शिवयोगी शिवाचार्य प्रणीत, व्याख्याकर्ता डा एम् शिवकुमार स्वामी शैवभारती शोधप्रतिष्ठान वाराणसी 2016

*'लिङ्गायत' शैव सम्प्रदाय के विशेष अध्येता, बीदर, कर्णाटक, 585404

शिवलिंग बिन्दुनादात्मक है ओंकार प्रणव उसका (मंच) अधर अर्थात पीठिका है, उसके ऊपर नाद ही लिंग आकार (बिंदु) रूप धारण किया है इस तरह बिंदु-नादात्मक लिंग में सर्वदा शिव (ब्रह्म) स्थिर (वास) है। सूक्ष्मागम में यह कहा गया है

लकारो लयबुद्धिस्थो बिंदुना स्थितिरुच्यते।
गकारात् सृष्टिरित्युक्ता लिंगं सृष्ट्यधिकारणम्॥

सृष्टि स्थिति लय का जो कारण है उसे ही लिंग कहा जाता है जगत सृष्टि का संबंध में बिंदु उपादान कारण है बिंदु शक्ति है नाद शिव है बिन्दुनादात्मक ही शिव लिंग है इसका बहुत ही सुंदर वर्णन चंद्रज्ञानागम में कहा गया है

बिंदुनादात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
बिन्दुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्तात्मकं जगत्॥[2]
बिंदुनादात्मकं लिंगं जगत्कारणमुच्छते।
तस्माज्जन्मनिवृत्यर्थ शिवलिंगं प्रपूज्येत्॥[3]

सारा जगत् बिदु नादात्मक है। यहाँ पर बिंदु शक्ति है और नाद शिव है। इस तरह जगत् शिव और शक्ति से समाविष्ट है। बिंदु-नादात्मक यह लिंग ही सारे जगत् का कारण है।

वीरशैव तत्त्व में अल्लम प्रभु कहते हैं कि शून्य ही बीज है और शून्य ही फसल है। अर्थात् शिव का बीज है और शिव की ही सृष्टि है। सभी जीवों में शिव का अंश है ही। जो कुछ इस सृष्टि में प्रकट है, दृश्यमान है, वह उसीके रूप हैं। अन्त में सभी कुछ इसी पराशिव यानी शून्य (बिंदु) में समाहित होता है। इस प्रकार सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण- इन तीनों गुणों की उत्पत्ति त्रिगुणमयी माया जो मूल प्रकृति या महामाया भी है, से ही होती है। जड़ और चेतन रूप दो पदार्थों की उत्पत्ति तो सीधे परमात्मा जो कर्ता, भर्ता, हर्ता है, से होती है परन्तु इन तीनों गुणों की उत्पत्ति परमात्मा (शून्य) के संकल्प से उत्पन्न आदिशक्ति या मूल प्रकृति या महामाया जो एकमात्र परमात्मा (शिव) की अर्द्धांगिनी रूप है, उसी परमात्मा की अध्यक्षता एवं निर्देशन में सृष्टि की उत्पत्ति, रक्षा व्यवस्था एवं संहार करती व कराती है। उत्पत्तिकर्ता (सृष्टि के) ब्रह्माजी, सृष्टि के व्यवस्थापक श्रीविष्णुजी एवं सृष्टि के संहारक शंकरजी, इन तीनों की उत्पत्ति एवं क्रिया-कलाप इसी आदि-शक्ति के निर्देशन में होता है। इस प्रकार परमात्मा एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के बीच यह आदि शक्ति दोनों वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। भगवान कृष्ण गीता में कहते है :-

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥[4]

हे अर्जुन! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से अथवा मेरी अध्यक्षता एवं निर्देशन में ये मेरी माया चराचर (जड़-चेतन) सहित सब जगत् को रचती है और इस उपर्युक्त कारण से ही यह संसार आवागमन के चक्र में घूमता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में त्रिगुणसहित शक्ति और शिव की बहुत ही सुन्दर व्याख्या की गयी है-

[2] चन्द्रज्ञानागम, 3.13, व्रजवल्लभ द्विवेदी (संपादक), शैवभारती शोधप्रतिष्ठान वाराणसी
[3] तदेव, 3.16
[4] श्रीमद्भागवत गीता, 9.10, कन्नड़ अनुवाद शिवलिंग हिरेमठ बेंगलूर

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥[5]

इस प्रकरण में जो माया के नाम से वर्णन हुआ है, वह तो भगवान् की शक्तिरूपा प्रकृति है और उस माया नाम से कही जानेवाली शक्तिरूपा प्रकृति का अधिपति (स्वामी) परमब्रह्म परमात्मा महेश्वर है। इस प्रकार इन दोनों को अलग-अलग समझना चाहिए। उस परमेश्वर की शक्तिरूपा प्रकृति के ही अंग कारण-कार्य समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है।

यहाँ पर जिस माया का जिक्र है वह अद्वैत की अविद्या रूप माया नहीं है। यह शक्ति रूपी माया है। वातुलागम के श्रीकर-भाष्य में इसका पुष्टि है की :-

मं शिवं परमं ब्रह्म प्राप्नोतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी॥[6]

इसीको पुष्टि करते हुए आचार्य शंकर कहते है :-

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥1॥[7]

आचार्य शंकरजी के बातों से यही प्रतीत होता है शिव (ब्रह्म) शक्ति (कला) युक्ता है। शिव को कल्याण का पर्याय और आदिदेव माना गया हे। उनके वाम विभाग (दाहिने अंग) में गिरिजा शक्तिस्वरूपा हदयस्पंदनवत् विद्यमान हैं। भगवान् शिव शक्ति से युक्त होकर ही समस्त सृष्टि का संचालन करने मे समर्थ हो पाते हैं।

इस हेतु स्वाभाविक ही शिव उपासना में सहज ही शक्ति पूजा हो जाती है। शक्ति रहित शिव कल्पना अर्थहीन, व्यर्थ-तत्त्वार्थ है। इसलिए सभी सनातनी शिव-शक्ति उपासना अवश्य करें। विशेषतः शैवमतावलम्बियों के लिए शिवरात्रि जितना महत्व है, उतना ही महत्त्व नवरात्र-पर्व का भी है। अंतिम माँ भगवती को प्रणाम करते हुए लेख को पूर्ण करता हूँ।

यह जगत् 'नटराज' शिव के 'तांडव नृत्य' का प्रतीक है। नटराज का यह नृत्य विश्व की पाँच महान् क्रियाओं का निर्देशक है- सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव (अदृश्य, अंतर्हित) और अनुग्रह। शिव की नटराज की मूर्ति में धर्म, शास्त्र और कला का अनूठा संगम है। 28 शैवागमों में से स्वयम्भू-आगम में इस तरह वर्णन है कि उन्होंने अपने पहले दाहिने हांथ में (जो कि उपर की ओर उठा हुआ है) डमरु पकड़ रखा है। डमरू की आवाज सर्जन का प्रतीक है। इस प्रकार यहाँ शिव की सर्जनात्मक शक्ति का द्योतक है। उपर की ओर उठे हुए उनके दूसरे हाथ में अग्नि है। यहाँ अग्नि

[5] श्वेताश्वतरउपनिषद्, 4.10, हिंदी महेशानंद गिरी दक्षिणामूर्ति मठ वाराणसी
[6] श्रीकर भाष्य सिद्धांत और प्रतिपसखा, (हिंदी), 2/1/3/9 डा व्रजेश कुमार पाण्डे, शिवालिक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 382
[7] सौन्दर्यलहरी, प्रथम श्लोक, कन्नड़ अनुवाद गंजुर रामकृष्ण शास्त्री

विनाश की प्रतीक है। इसका अर्थ यह है कि शिव ही एक हाथ से सृजन करतें हैं तथा दूसरे हाथ से विलय। उनका दूसरा दाहिना हाथ अभय (या आशीष) मुद्रा में उठा हुआ है जो कि हमें बुराईयों से रक्षा करता है। उठा हुआ पांव मोक्ष का द्योतक है। उनका दूसरा बायाँ हाथ उनके उठे हुए पाँव की ओर इंगित करता है।

शिव, जगत् और जीव– ये तीन तत्त्व हैं। ब्रह्म शब्द 'ब्रह्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'बढ़ना' या 'फूट पड़ना' होता है। ब्रह्म वह है, जिसमें से सम्पूर्ण सृष्टि और आत्माओं की उत्पत्ति हुई है, या जिसमें से ये फूट पड़े हैं। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कारण शिव है।

जिस तरह मकड़ी स्वयं, स्वयं में से जाले को बुनती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी स्वयं में से स्वयं ही विश्व का निर्माण करता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि नृत्यकार और नृत्य में कोई फर्क नहीं। जब तक नृत्यकार का नृत्य चलेगा, तभी तक नृत्य का अस्तित्व है, इसीलिए ईश्वर के होने की कल्पना अर्धनारीश्वर के रूप में, शक्ति-सहित स्वरूप में विद्यमान नटराज के स्वरूप में की गयी है।

शिव -शिवा, अर्धनारीश्वर, प्रकृति-पुरुष (माया -ब्रह्म) के समान, संयुक्त हैं। सारी कलाएँ उन्हींसे प्रकट होती हैं। उनके केश शशिकला से अलङ्कृत हैं। अपने-अपने तप के फलस्वरुप दोनों ने एक-दूसरे को प्राप्त किया हैं। वे भक्तों को कृपा-प्रसाद प्रदान करते हैं। तीनों लोकों के लिये वे सम्पूर्ण रुप से माङ्गलिक हैं। ध्यान की उन्नति के साथ-साथ वे हृदय में बार-बार प्रकट होते हैं। उनके अनुभव के फलस्वरुप आनन्द की स्फूर्ति होती है।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का आषाढ़ मास का अंश इस बार भगवान् जगन्नाथ को समर्पित प्रस्तावित है। आषाढ मास की सबसे महत्त्वपूर्ण सनातनी गतिविधि भगवान् जगन्नाथ की रथ-यात्रा है। न केवल जगन्नाथ पुरी स्थित मूल मन्दिर में, अपितु बिहार के भी अनेक मन्दिरों में रथयात्रा का आयोजन आस्था के साथ होता है। देश में अनेक जगन्नाथ मन्दिर हैं, जहाँ मूल मन्दिर की परम्परा को सुरक्षित रखी गयी है। इस अंक हेतु स्कन्द-पुराण वर्णित जगन्नाथ-माहात्म्य, वर्तमान जगन्नाथ मन्दिर का इतिहास, इस मन्दिर में दइता परिवार द्वारा पूजा की परम्परा, देश के अन्य जगन्नाथ-मन्दिरों का विवरण, रथयात्रा का वर्तमान स्वरूप, जगन्नाथ मन्दिर से सम्बन्धित ऐतिहासिक आख्यान, उड़ीसा के वैष्णव सन्तों की परम्परा, अतीत में विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों की जगन्नाथ-यात्रा के विवरण आदि विषयों पर आलेख आमन्त्रित हैं। मिथिला से भी उदयनाचार्य, गोविन्द ठाकुर आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के द्वारा जगन्नाथ-यात्रा के संकेत मिलते हैं। परम्परानुसार बड़हिया स्थित मन्दिर के प्रांगण में श्रीधर के कूप की कथा भी जगन्नाथ-यात्रा की कथा से जुड़ी हुई है। चैतन्य महाप्रभु ने भी भगवान् जगन्नाथ की शरण में बहुत दिनों तक वास किया था। कहा जाता है कि औरंगजेब इस मन्दिर को तोड़ने के लिए अपनी सेना भेजी, लेकिन वह मन्दिर का कुछ भी बिगाड़ न सकी। 19वीं शती में सनातन धर्म की गतिविधियों का केन्द्र भी यह मन्दिर रहा है। इन्हीं विविध विषयों को पर विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं।

***

भगवती-तत्त्व विमर्श

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य

परमाद्यां परास्बां हि देवीं भगवतीं सदा।
हृदा नमामि तां नित्यां, ययेदं रक्ष्यते जगत्॥

जगन्निमितोपादानकारण सर्वश्रेष्ठ सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वगुणाधार, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार, परब्रह्म परमात्मा वस्तुतः सर्वात्मना एक है। उपासक भाव रुचि वैचित्र्य के कारण या पंचतत्त्व (पृथ्वी, जल, थल, वायु, आकाश) के हितरक्षण हेतु सन्तुलन बनाये रखने में वह ''एकोऽहं'' एक परमात्मा शक्ति के विभिन्न नाम-रूप में पूजित प्रतिष्ठित होते हैं। वैदिक परब्रह्म प्रतिष्ठापन परिकल्पना में पंचब्रह्म- विष्णु, शिव, सूर्य, गणपति, शक्ति (दुर्गा) लक्ष्मी, उमा, ऋद्धि-सिद्धि, उषा इत्यादि विभिन्न रूपों में) उपास्य, ध्येय तथा आराध्य है। परन्तु तत्त्वतः एक है। इनमें पर, अवर, उत्कृष्ट, निकृष्ट भेद-संचार वैयक्तिक हठवादिता का परिणाम है। कहीं से शास्त्रीय संचार नहीं है।

भगवती तत्त्व पर 108 उपनिषदों में पृथक् एक ''देव्युपनिषद्'' है। जहाँ वह अपना स्वरूप परिचय देती है। ''दुर्गासप्तशती'' में 'देव्यथर्वशीर्ष' नाम से उल्लिखित है।

अथोपनिषत् - ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कोऽसि त्वं महादेवीति॥1॥ अर्थात् सभी देव देवी के समीप पहुँच कर पूछते हैं हे महादेवी तुम कौन हो? **साब्रवीत् - अहं ब्रह्मस्वरूपिणी,** देवी बोली- मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ।

महादेवी के उत्तर से ''एकोऽहम्'' ब्रह्म परिधि में मूल में भेद कहीं से संभव नहीं है। इस ब्रह्मस्वरूपपरिधि में एक देवपूजन से सुतरां सर्वदेवपूजन स्वतः हो जाता है। परन्तु जो अनन्यता के हठवाद में एक इष्टदेव को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर अन्य देवों की अवज्ञा करता है, वह निश्चित रूप से अपने ही इष्टदेव की अवज्ञा करता है; क्योंकि उन्हें एकरूप में सीमाबद्ध करना व्यापकता का हनन होगा तथा छोटा समझना होगा। ऐसी पूजा स्वल्पता की परिधि में अग्रसर होगी तो इसका फल भी स्वल्प ही होगा या स्वरूप हनन से फल न भी मिले।

“जो श्रीकृष्ण, राम, शिव, गणेश, सूर्य की उपासना करते हैं वह इसी महाशक्ति की उपासना है। इसी प्रकार जो दुर्गा, लक्ष्मी, तारा, सरस्वती, विद्या, काली, षोडशी, आदि की उपासना करते हैं- वह उपासक भी इसी महाशक्ति की है। एतावता- जो जिस रूप की उपासना करते हैं उसे छोड़ने की आवश्यकता नहीं है- परन्तु उस उपासना में यह भाव अवश्य ध्यातव्य है कि मैं जिस नाम-रूप की उपासना करता हूँ वह सर्वरूपमय, सर्वदेवमय, सर्वशक्तिमय तथा सर्वोपरि है। नूनं नितरां एक की पूजा से सर्वपूजा, सर्वप्रसन्नता, सर्वकृपा संचारित होगी।

व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

महाशक्ति

वस्तुतः वह एक महाशक्ति परमात्मा ही है। जो विभिन्न रूपों में विभिन्न लीलायें करते हैं। परमात्मा के पुरुषवाचक स्वरूप इन्हीं अनादि, अविनाशिनी, अनिर्वचनीया, सर्वशक्तिमयी परमेश्वरी आद्या महाशक्ति के ही है। यह महाशक्ति जब कार्यकारिणी माया शक्ति को अन्तरंगस्थ कर लेती है, तब उस निष्क्रियावस्था में शुद्ध ब्रह्म कहलाती है। जब ''बहु स्याम'' (अर्थात् अनेक हो जाऊँ का संकल्प होता है- तब वह एक ही महाशक्ति स्वयं पुरुषरूप से स्वप्रकृति रूपयोनि में संकल्प द्वारा चेतनरूप बीज (कारण) स्थापित कर सगुण साकार निर्गुण निराकार परमात्मा बन जाती है।

निर्गुण-सगुण

वह परमात्मरूपा महाशक्ति निर्गुण-सगुण दोनों देवों में स्वयं सिद्ध है। जब माया शक्ति क्रियाशील रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती है। जब वह माया शक्ति महाशक्ति में प्रच्छन्न रहती है- तब वह महाशक्ति युगलमयी उत्पन्न करनेवाली महालक्ष्मी है। जिनकी शक्ति से ब्रह्मादि का सर्जन होता है। इसी महाशक्ति से विष्णु में पालकत्व, शिव में संहारकत्व का संचार होता है। इसी महाशक्ति की विभिन्न कल्याणकारिणी शक्तियाँ-विविध नामरूपों से संसार में संचारित हो पूज्य प्रतिष्ठित होती है।

यथा- दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, मति, धृति नुति, मति, कान्ति, शक्ति, स्थिति, तुष्टि पुष्टि, लज्जा, प्रभृति विभिन्न शक्तियाँ महाशक्ति की ही हैं, जिनका स्तवन ''दुर्गासप्तशती'' के पंचम अध्याय में सश्रद्धा अग्रसर है।

यही महाशक्ति- क्षीरसागर में महालक्ष्मी, दक्षकन्या सती, राधा, सीता, दुर्गा है। ये ही वाणी, विद्या, गायत्री, सावित्री हैं। अर्थात् समस्त पदार्थो के पदार्थानुकूल गुणों की संचारिका यही महाशक्ति है। शक्तिपद वाच्य विश्व में जो भी स्वीकृत व्यवहृत है- वह उसी महाशक्ति का ही रूप है। इस अभेद व्यापक दृष्टि से महाशक्ति की उपासना ही सर्वतः निर्बाध लाभकारी होगी। इस महाशक्ति के बिना ही जीवन में सर्वशून्यता का संचार होता है।

जो श्रीकृष्ण, राम, शिव, गणेश, सूर्य की उपासना करते हैं वह इसी महाशक्ति की उपासना है। इसी प्रकार जो दुर्गा, लक्ष्मी, तारा, सरस्वती, विद्या, काली, षोडशी, आदि की उपासना करते हैं- वह उपासक भी इसी महाशक्ति की है। एतावता- जो जिस रूप की उपासना करते हैं उसे छोड़ने की आवश्यकता नहीं है- परन्तु उस उपासना में यह भाव अवश्य ध्यातव्य है कि मैं जिस नाम-रूप की उपासना करता हूँ वह सर्वरूपमय, सर्वदेवमय, सर्वशक्तिमय तथा सर्वोपरि है। जिस नाम रूप की उपासना करें उसी को अंगी मान लें शेष नामरूप को अंग मान लें। नूनं नितरां एक की पूजा से सर्वपूजा, सर्वप्रसन्नता, सर्वकृपा संचारित होगी। इसमें कहीं से संदेह करना महाशक्ति तत्त्व का अपलाप करना है। साधना-तत्त्व का एक विशेष भाव यह भी है कि उस परब्रह्म की मातृस्वरूप में उपासना विशेष हृदग्राह्य है। इसीलिए भगवती-तत्त्व विशेष आदरणीय, ध्येय, पूज्य, सुलभग्राह्य तथा आत्मीय है। तभी तो यह कथन- ''कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'' सर्वथा सार्थक होगा। युगलोपासना की नित्यता के पीछे भी यही भाव संचरित है। पिता संभवतः क्षमा न भी करे, परन्तु माँ तो अवश्य ही क्षमा करेगी। अतः सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण जिह्वाग्र पर स्मरणीय समुच्चरणीय है।

विशिष्टाद्वैत दर्शनानुसार भगवदुपासना परिधि में अर्चावतार सरणि में मन्दिरों में सदैव नारायण के दक्षिण भाग में लक्ष्मी का स्थापना की जाती है। यह भी रामानुज-परम्परा का विशिष्ट पृथक् अभिज्ञान है। इसके पीछे तात्पर्य यह है कि मन्दिर में भगवत्-सन्निधि में दक्षिण भाग से ही साष्टाङ्ग प्रणिपात का प्रावधान है, जिससे फलतः प्रथम प्रणिपात माँ के चरणों में होगा। जिससे माँ के द्वारा दोषों की राशि जीव सदैव क्षमा का पात्र होगा। माँ के क्षमादान करने पर पिता तो क्षमादान कर ही देंगे, या माँ क्षमादान करा देगी। यह भगवती तत्त्व मातृशक्ति का संचार है। इस दर्शन में भगवदुपासना में लक्ष्मी का विशेष आदरणीय पूज्य स्थान है। फलतः माँ लक्ष्मी समाश्रित 100 श्लोकों में 'श्रीगुणरत्नकोष' अनुपम मातृत्वगुण संचारक स्तोत्रग्रन्थ भक्तिभावसमाश्लिष्ट शिष्टजनों के द्वारा पूज्य पठनीय तथा पाठनीय है। पुरुषवाचक परब्रह्म से पृथक् उपास्य स्थिति में स्त्रीवाचक परब्रह्म स्वरूपा भगवती का वरणीय, महनीय, नन्दनीय, नमनीय तथा सर्वथा स्वीकरणीय स्थान है। जहाँ मातृ-पुत्रभाव का संचार ही सर्वथा सर्वदा शाश्वत है। जहाँ माता से पुत्र को कहीं भी किसी तरह का भयभेद नहीं है, जहाँ मातृशक्ति का वात्सल्य,औदार्य, सारल्य निरपेक्ष कल्याणकामी कृपाकूपार सतत पुत्रालिङ्गन के लिए तरङ्गायित होता रहता है।

संकटग्रस्त जयन्त की कथा

भगवती-तत्त्व निहित विविधकल्याण गुणगण कृपाकूपार संचार में प्राणसंकटापन्न भयाक्रान्त इन्द्रपुत्र जयन्त भक्तवत्सल प्रभु के समस्त आतुरावस्था में प्रणिपात विधान भी भूल गया। प्रभु के चरणों में शिर न रखकर पादस्थापन किया ऐसी दुर्दशा को देखकर मातृशक्ति विह्वल हो गयी। स्वयं के साथ ही साक्षात् अपराध करनेवाले जयन्त प्रभु दृष्टि में क्षम्य हो तदर्थ अपने से उठकर मां जानकी ने जयन्त के शिर को प्रभुचरण में स्थापित किया, अभयदान भी करवाया पद्मपुराण में इसका वर्णन आया है-

प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम्।
त्राहित्राहीति भर्तारमुवाच विनयाद्विभुम्॥207॥
पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा॥
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी॥208॥
समुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूषसागरः॥
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययार्दितः॥209॥[1]

यह परब्रह्म के मातृवाचक भगवती तत्त्व का सुपरिणाम है। अतः जगत्कल्याणार्थ परब्रह्मस्वरूप भगवतीतत्त्व सदा भक्त वरेण्य है, जिसके महद्-वैशिष्ट्य को आदि शंकराचार्य नें भी स्वानुभूति परिधि में स्थापित किया-

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजंगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥

अर्थात् हे भवानी, चिता का भस्म लगानेवाले, विषपायी, दिगम्बर, जटा धारण करनेवाले, गले में सर्पराज की माला धारण कनेवाले पशुपति, कपाल धारण करनेवाले भूतेश यदि संसार के एकमात्र ईश हैं तो आपके पाणिग्रहण का ही तो परिणाम है।

यह भाव मातृशक्ति संचरण में ही संभव है।

1. पद्मपुराणम्/खण्डः 6, उत्तरखण्डः, अध्यायः 242

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥

देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् – 10

हे माँ, हो करुणा के सागर दुर्गे यदि तुम कहोगी कि आपत्ति आने पर ही यह रक्षा हेतु मेरे पास आया है, जब सुखी था तब तो दूर था, पर यह कथन उचित् नहीं। भूख-प्यास लगने पर ही तो बालक माँ के पास आता, अन्यथा वह बाललीला में ही लीन रहता है। संसार में जहाँ भी वात्सल्य, सारल्य, तरलता, करुणा दया, कृपा अनुकम्पा, क्षमा, सहानुभूति, संवेदना, परदुःखकातरता, परहिततत्परता, सहिष्णुता, उपकार प्रभृति गुणों का संचार है, वह भगवती मातृशक्ति की निरन्तरता का परिणाम है। पुरुषवाचक परब्रह्म राम-कृष्णादि नामरूपों में उक्त गुणों का संचार मातृशक्ति का ही तो संचार है। इन्ही कारणों तथा गुणों के आधार पर जीवमात्र विभिन्न नाम-रूपों में परब्रह्मस्वरूप सर्वथा उपास्य है। यही मानव जीवन को एकमात्र उद्देश्य भी है। इस बोध की अरहता तो पशु-पक्षियों में दूर-दूर तक सम्भव नहीं है। संसार के संरक्षण एवं संवर्द्धन की अपनी परिधि में जो अर्हता पशुपक्षियों में है, वह मनुष्य में नहीं है। तो अर्हता सम्यक् सुतर्क्य परिणाम में मनुष्य परब्रह्म का अंश है, परब्रह्म अंशी है। अंश-अंशी का नित्य सम्बन्ध होता है। इसी सम्बन्ध का विस्मरण सर्वदुःखदायक है। नित्य सम्बन्ध के जागरण का लक्ष्य लेकर मनुष्य मात्र के सभी विहित कर्तव्य होने चाहिए।

विशेष ध्यातव्य

जिससे उसका अस्तित्व है, वहीं उसकी जीवनी शक्ति है। जैसे जीवनी शक्ति के विना कोई जीवित नहीं रह सकता वैसे ही ब्रह्म की वह जीवनशक्ति ब्रह्म से भिन्न नही है। यही जीवनशक्ति अन्यान्य समस्त शक्तियों की जननी है। यह परमात्मरूपा महाशक्ति है, जो भगवती तत्त्व से जगदुपास्य है। जगत् की अन्यान्य सम्पूर्ण शक्तियाँ इसी परमात्म रूपा महाशक्ति में छिपी रहती है। इसी प्रच्छन्न शक्तियों में जगत्कल्याणार्थ यथा समय पात्रविशेष के द्वारा प्रकट होकर कार्य करती हैं, तथा करवाती हैं। भगवती-तत्त्व से वाच्य यह परमात्मा महाशक्ति सर्वदा, सर्वथा नित्य करुणासागर है। काली, धूमावती, कात्यायनी, नृसिहादि रूपों में इस परमात्मरूपा महाशक्ति की भयावहता, क्रूरता, धर्मभक्तविध्वंसक दुष्टों के लिए राक्षसों के लिए है, न कि पुत्र भक्तों के लिए। निर्भय होकर सप्रेम परमात्म रूपा महाशक्ति का चरण-शरण -वरण सर्वथा कल्याणप्रद है। बस, सावधान होकर परब्रह्मतत्त्वज्ञानसंचरण की परिधि में उपासना अपेक्षित है। साथ-साथ यह भी विशेष चिन्तनीय है कि उपासक अपनी लघुसीमाबद्ध दृष्टि में कामनाबंधन में परमात्म रूपा महाशक्ति को बांधने का कुत्सित प्रयास न करें। स्वयं को महाशक्ति के अनुरूप परिवर्तित करना ही धर्मस्वरूप संचरण होगा। उस परमात्म रूपा महाशक्ति के अन्तिम दुःख में भी कोई असीम सुख तथा कल्याण छिपा है, इस महाविश्वास से संचरित साधना अमोघसिद्धि देने वाली है। पूर्ण पारदर्शिता में परमात्मरूपा महाशक्ति भगवती तत्त्व से वाच्य विभिन्न नाम-रूपों के समक्ष समुपस्थित होने की आवश्यकता है-

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि। एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥

***

श्री राजीव नंदन मिश्र 'नन्हें'

मातृशक्ति का सम्पूर्ण रूप देवी सीता में समाहित

ऋग्वेद की वागाम्भृणी सूक्त शक्ति-विमर्श का प्राचीनतम साक्ष्य है, जिसमें देवी कहती हैं कि मैं रुद्रों, वसुओं, आदित्यों और विश्वेदेवों की सहचारिणी हूँ। मैं रुद्र के लिए धनुष् पर प्रत्यञ्चा चढ़ाती हूँ। इस सूक्त के परिप्रेक्ष्य में शक्ति-विमर्श करते हुए लेखक ने सीता की कथा को उस व्यापक फलक पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है। साथ ही, नारी-शक्ति को भी उसी भावभूमि पर मर्यादित कर उसे दिव्य स्वरूप में प्रतिबिम्बित किया है।

एक ऐसी शक्ति जिसमें पूरा संसार समाहित है वो शक्ति है- मातृशक्ति। माता, बहन, भाभी, पत्नी अनेक पवित्र रिश्तों का केन्द्र मातृशक्ति ही हैं। मातृशक्ति का गुणगान वेदों, पुराणों, उपनिषदों, महाकाव्यों, दर्शनशास्त्रों एवं स्मृतियों में मिलता है व इसे ही सर्वोच्च बताया गया है। सभी धर्म के अनुयायियों ने भी माँ की महत्ता को प्रथमा की संज्ञा दी हैं। वेद स्त्रियों को घर की सम्राज्ञी कहते हैं और देश की शासक, पृथ्वी की सम्राज्ञी तक बनने का अधिकार देते हैं।

मातृशक्ति का 'माँ' शब्द में ही मनुष्य के जीवन से मरण तक का हर अंश समाहित हैं। उस माँ के रूप अनेक हो सकते है पर उनके कार्य एक और हमेशा नेक ही है- उनका प्रेम। एक बच्चा माँ के गर्भ से जन्म लेता है उसका पूरा पोषण निःश्वार्थता के साथ माँ करती है। उस माँ को जन्मदायिनी कहा जाता है।वही जन्म लिया बालक धरती पर अपना कदम रखता है। बार-बार गिरता है, सम्भलता है फिर वह चलना सीखता है। जहाँ वह चलना सीखता है वह माँ का ही रूप है- धरती माँ। धरती माँ की गोद में ही अपने जीवन का प्रारम्भ कर वह बालक किशोर बनता है। विद्या की देवी माँ सरस्वती के आशीर्वाद से ज्ञान पाता है।धरती पर अन्न आदि उपजाता है या व्यवसाय आदि करता है। इसी धरती से खनिज आदि भी प्राप्त करता है। इस तरह जब सम्पूर्ण जीवन बिता लेता है तो मरणोपरांत उसे जलाया जाता है उसकी राख धरती माँ में मिल जाती है एवं अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित होती है।गंगा माँ अपने में उसे समाहित कर लेती है। इस प्रकार से माँ के गर्भ से जन्म लेकर माँ में ही मिल जाना यह एक संसार का कटु सत्य है। इस उदाहरण से ही समझा जा सकता है कि मातृशक्ति के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।

युवा कवि व लेखक, ग्राम व पोस्ट-सरना, थाना-शाहपुर,जिला-भोजपुर, बिहार-802165, मो.-7004235870, Email-mrrajeevnandan@gmail.com

नारी जैसा समर्पण, नारी जैसा विश्वास,नारी जैसा सौहार्द्र-प्रेम, नारी जैसा त्याग, नारी जैसा क्षमा, नारी जैसा साहस देने वाला, नारी जैसा वात्सल्य, नारी जैसी शक्तियाँ हमें और किसी से प्राप्त हो ही नहीं सकती है। माँ के रूप में वात्सल्यता,बहन के रूप में ध्यान देने वाला,पत्नी के रूप में मित्रता एवं अन्य ऐसे कितने ही नारी के रूप है जो जीवन भर नव उर्जा से ऊर्जान्वित करते रहते हैं। जिसके पीठ पर मातृशक्ति का सर्वदा हाथ रहता है वह हर क्षेत्र में विजयी होता है उसे कभी कोई पराजित नहीं कर सकता हैं।

हम सभी नवरात्रि में देवी का पूजन करते है। देवी पूजन का अर्थ ही मातृशक्ति की उपासना एवं ध्यान है। शक्ति का सही रूप सृजनकर्ता, रक्षाकर्ता एवं विनाशकर्ता से है। वह शक्ति नारी के रूप में संसार के सृजन के साथ-साथ उसका रक्षा एवं पालन करती है।परन्तु वही शक्ति जब संसार में पाप,अधर्म,अन्याय आदि बढ़ने लगता है अर्थात सांसारिक संतुलन बिगड़ने लगता है तब दुर्गा, काली, चामुण्डा आदि रूप धारण कर इस संसार से आसुरी शक्तियों का विनाश करती है। अधर्म,अन्याय का नाश कर धर्म एवं न्याय का पताका लहराती हैं।

दुर्गा सप्तशती के 700 श्लोकों में देवी का गुणगान है।इन सात सौ श्लोकों में मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन वशीकरण,विद्वेषण के श्लोक हैं। सच्चे मन से इन श्लोकों के पाठ मात्र से देवी को प्रसन्न कर उनकी शक्तिरूपी कृपा प्राप्त की जा सकती है।

सर्वप्राचीन वेद ऋग्वेद के दशम मण्डल का दसवाँ अध्याय के 125 वें सूक्त में आठ ऋचाएँ हैं। इन्हें वाक्-सूक्त या 'आत्मसूक्त' कहते हैं। इसमें अम्भृण-ऋषि की पुत्री वाक् ब्रह्मसाक्षात्कार से सम्पन्न होकर अपनी सर्वात्मदृष्टि को अभिव्यक्त कर रही है। मार्कण्डेयपुराण में वर्णित हैं कि राजा सुरथ तथा वैश्य समाधि ने इसी देवी-सूक्त का पाठ किया जिससे भगवती का साक्षात्कार हुआ। ऋग्वेद के देवी सूक्त में विनियोग एवं ध्यान के बाद आठ श्लोक है जिसमें बताया गया है मैं राष्ट्र की अधीश्वरी हूँ। पूजन एवं होम में प्रथम देवताओं की धात्री हूँ।लोगों की रक्षा हेतु युद्ध करती हूँ।देवों और मानवों की शक्ति व कर्मो की अधिष्ठात्री हूँ।इसके अलावा मैं द्यावापृथिवी का अतिक्रम कर चुकी हूँ। ये आठ श्लोक है-

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥1॥

ब्रह्मस्वरुपा मैं रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वदेवता के रुप में विचरण करती हूँ,अर्थात् मैं ही उन सभी रुपों में भासमान हो रही हूँ।मैं ही ब्रह्मरुप से मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ।मैं ही इन्द्र और अग्नि का आधार हूँ।मैं ही दोनो अश्विनी-कुमारों का भी धारण-पोषण करती हूँ॥1॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥2॥

मैं ही शत्रुनाशक,कामादि दोष-निवर्तक, परमाह्लाददायी, यज्ञगत सोम, चन्द्रमा, मन अथवा शिव का भरण पोषण करती हूँ। मैं ही त्वष्टा, पूषा और भग को भी धारण करती हूँ।जो यजमान यज्ञ में सोमाभिषव के द्वारा देवताओं को तृप्त करने के लिये हाथ में हविष्य लेकर हवन करता है, उसे लोक-परलोक में सुखकारी फल देने वाली मैं ही हूँ॥2॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥3॥

मैं ही राष्ट्री अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ।मैं उपासकों को उनके अभीष्ट वसु-धन प्राप्त कराने वाली हूँ। जिज्ञासुओं के साक्षात् कर्तव्य परब्रह्म को अपनी आत्मा के रुप में मैं अनुभव कर ली हूँ। जिनके लिये यज्ञ किये जाते हैं,उनमें मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। सम्पूर्ण प्रपञ्च के रुप में मैं ही अनेक-सी होकर विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में जीवनरुप में मैं अपने-आपको ही प्रविष्ट कर रही हूँ। भिन्न-भिन्न देश, काल, वस्तु और व्यक्तियों में जो कुछ हो रहा है,किया जा रहा है, वह सब मुझमें मेरे लिये ही किया जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व के रुप में अवस्थित होने के कारण जो कोई जो कुछ भी करता है, वह सब मैं ही हूँ॥3॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥4॥

जो कोई भोग भोगता है, वह मुझ भोक्त्री की शक्ति से ही भोगता है। जो देखता है, जो श्वासोच्छवास-रुप व्यापार करता है और जो कही हुई सुनता है, वह भी मुझसे ही है। जो इस प्रकार अन्तर्यामिरुप से स्थित मुझे नहीं जानते, वे अज्ञानी दीन, हीन, क्षीण हो जाते हैं।मेरे प्यारे सखा! मेरी बात सुनो, मैं तुम्हारे लिये उस ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ, जो श्रद्धा-साधन से उपलब्ध होती है॥4॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ 5 ॥

मैं स्वयं ही ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ। देवताओं और मनुष्यों ने भी इसी का सेवन किया है। मैं स्वयं ब्रह्मा हूँ। मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ, उसे सर्वश्रेष्ठ बना देती हूँ, मैं चाहूँ तो उसे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा बना दूँ और उसे बृहस्पति के समान सुमेधा बना दूँ। मैं स्वयं अपने स्वरुप ब्रह्मभिन्न आत्मा का गान कर रही हूँ॥ 5 ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ 6 ॥

मैं ही ब्रह्मज्ञानियों के द्वेषी हिंसारत त्रिपुरवासी त्रिगुणाभिमानी अहंकार-असुर का वध करने के लिये संहारकारी रुद्र के धनुष पर ज्या (प्रत्यञ्चा) चढाती हूँ। मैं ही अपने जिज्ञासु स्तोताओं के विरोधी शत्रुओं के साथ संग्राम करके उन्हें पराजित करती हूँ। मैं ही द्युलोक और पृथिवी में अन्तर्यामिरुप से प्रविष्ट हूँ॥ 6 ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम् योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ 7 ॥

इस विश्व के शिरोभाग पर विराजमान द्युलोक अथवा आदित्यरुप पिता का प्रसव मैं ही करती रहती हूँ। उस कारण में ही तन्तुओं में पटके समान आकाशादि सम्पूर्ण कार्य दीख रहा है। दिव्य कारण-वारिरुप समुद्र, जिसमें सम्पूर्ण प्राणियों एवं पदार्थों का उदय-विलय होता रहता है, वह ब्रह्मचैतन्य ही मेरा निवास स्थान है। यही कारण है कि मैं सम्पूर्ण भूतों में अनुप्रविष्ट होकर रहती हूँ और अपने कारण भूत मायात्मक स्वशरीर से सम्पूर्ण दृश्य कार्य का स्पर्श करती हूँ॥ 7 ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥8॥

वायु किसी दूसरे से प्रेरित न होने पर भी स्वयं प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मैं ही किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित और अधिष्ठित न होने पर भी स्वयं ही कारण रुप से सम्पूर्ण भूतरुप कार्यों का आरम्भ करती हूँ। मैं आकाश से भी परे हूँ और इस पृथ्वी से भी। अभिप्राय यह है कि मैं सम्पूर्ण विकारों से परे, असङ्ग, उदासीन, कूटस्थ ब्रह्मचैतन्य हूँ। अपनी महिमा से सम्पूर्ण जगत् के रुप में मैं ही बरत रही हूँ, रह रही हूँ॥ 8 ॥

अथर्ववेद ने पृथ्वी को माँ बताया है एवं स्वयं में समाहित करने की प्रार्थना जो कि गयी है प्राप्त होती है-

यत् ते मध्यम पृथिवि यच्च नभ्यं, यास्ते ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः,

तासु नो धे यभि नः पवस्व, माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः,

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।

अर्थात् "हे पृथ्वी, यह जो आपका मध्यभाग है और जो उभरा हुआ ऊधर्वभाग है, ये जो आपके शरीर के विभिन्न अंग ऊर्जा से भरे हैं,हे पृथ्वी माँ, आप मुझे अपने उसी शरीर में समाहित कर लीजिए और इस प्रकार दुलार कीजिये कि, मैं तो आपके पुत्र के जैसा हूँ, आप मेरी माँ है और पर्जन्य का हम पर पिता के जैसा साया बना रहे।

जिसके जाप मात्र से ही हर पीड़ा का नाश हो जाता है।एक अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है,उस माँ के प्यार पाने हेतु देवता भी गर्भ से बार-बार अवतार लेते है। माँ की ममता और उसके आँचल की महिमा को शब्दों में नहीं कहा जा सकता है, उसे केवल और केवल महसूस किया जा सकता है। नौ महीने तक गर्भ में रखकर प्रसव पीड़ा को झेलना फिर भी उफ तक नहीं करना,जन्म होने के पश्चात स्तनपान करवाना, रात-रात भर बच्चे के लिए जागकर उसका ध्यान रखना,आदि एक मातृशक्ति से बेहतर और कोई नहीं कर सकता।

श्रीमद्भागवत पुराण में यह प्राप्त होता है कि माताओं की सेवा से मिला आशिष, सात जन्मों के कष्टों व पापों को भी दूर करता है और उसकी भावनात्मक शक्ति संतान के लिए सुरक्षा का कवच का काम करती है।

भगवती सीता का आविर्भाव वैशाख मास की शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को हुआ था। वैशाख नवमी की पुष्य नक्षत्र में संतान प्राप्ति की कामना से यज्ञ की भूमि तैयार करने के लिए राजा जनक हल से भूमि जोतने खेत में निकले वे भूमि जोत ही रहे थे उसी समय पृथ्वी से देवी सीता का प्राकट्य हुआ। माता सीता के सम्पूर्ण जीवनकाल को ध्यान से अगर हम देखे व उस पर गौर करें तो मातृशक्ति का सम्पूर्ण रूप उनमें देखने को मिलता हैं। जन्म पश्चात् सखियों से प्रेम व पिता का पूरा ध्यान रखना।एक राजा के घर मे जन्म लेकर पली बढ़ी और राजा के घर ही विवाह भी हुआ। जनक दुलारी का विवाह दशरथ नंदन श्री रामचन्द्र से हुआ, जहाँ उन्होंने सास-ससुर की सेवा तो की ही पतिव्रता नारी का धर्म भी निभाया। सिंहासन पर विराजनेवाली देवी चौदह वर्ष वनवास बितायी। अनेकानेक दुष्ट राक्षसों का सामना किया। रावण का सामना किया।रावण ने जब सीता से श्री राम को भुल जाने की बात कही तब देवी सीता रावण पर कुपित होकर बोली तुम मेरा स्पर्श तक नहीं कर सकते। तूने अगर कायरता से मेरा हरण न किया होता तो वही अपने भाई खर के समान मारा गया होता।श्री राम तुम्हें इसका दंड उसी समय देते।हे नराधम रावण! परम पराक्रमी, धर्मपरायण एवं सत्यप्रतिज्ञ दशरथनन्दन श्री रामचन्द्र जी ही मेरे पति हैं। मैं उनके अतिरिक्त किसी अन्य की ओर दृष्टि

तक भी नहीं कर सकती। राम के हाथों तेरी मृत्यु निश्चित है। जरा सोच कमलों में विहार करने वाली हंसिनी क्या कभी कुक्कुट के साथ रह सकती है?

रावण-जैसे आततायी राक्षसों से स्वयं की रक्षा करने वाली वही देवी सीता अग्नि परीक्षा देती है। यह मातृशक्ति का साहस का परिचायक है। पुनः उन्हें राज्य से अलग कर दिया जाता है, महर्षि वाल्मीकि की कुटिया में रह कर लव-कुश नामक दो बच्चों का पालन-पोषण, गुरु सेवा, जंगल से लकड़ी काटना एवं अन्य कार्य स्वयं अकेले करती है। लव-कुश का पालन करती हुई वत्सला रूप, पति की सेवा में पतिव्रता नारी, सास-ससुर सेवा में बहू, देवर का ध्यान रखने में कुशल भाभी, जनता की सेवा में कुशल राजकुमारी, सखियों से साथ अविस्मरणीय मित्रता, असुरों से स्वयं की रक्षा करने वाली महान तेजस्विनी, देवी सीता के एक रूप में समस्त मातृशक्ति के रूपों को सदा दर्शाता है।

रामायण में श्रीराम ने लक्ष्मण से वार्तालाप के दौरान माता को सर्वश्रेष्ठ बताया है

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

अर्थात लक्ष्मण! भले ही यह लंका सोने की बनी है, फिर भी इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है,क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं।

माँ की महत्ता का यह श्लोक- **मातृदेवो भव।** अर्थात, माता देवताओं से भी बढ़कर होती है। प्राप्त होता है। इसी प्रकार माँ को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने महाभारत में लिखा है

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राण, नास्ति मातृसमा प्रिया॥

माता के समान कोई छाया नहीं, माता के समान कोई आश्रय नहीं,माता के समान कोई रक्षक नही है। माता के समान इस दुनिया में कोई प्रिय वस्तु नहीं है।

मनुस्मृति में मातृशक्ति का उल्लेख करते हुए एक श्लोक प्राप्त होता है जिसमे नारी के सम्मान देवता के वास से बताया गया है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नही होती है, उनका सम्मान नही होता है वहाँ किये गये समस्त अच्छे अर्थात सफल होने वाले कर्म निष्फल हो जाते हैं।

हम सभी को मातृशक्ति के समस्त रूपों का सम्मान करना चाहिए। समाज में उन्हें समानता का अधिकार मिलना चाहिए।भगवान कृष्ण द्वारा किया गया रासलीला वास्तव में मातृशक्ति को अन्याय के प्रति जागृत करने का प्रयास ही था।महिलाओं को समाज में सही न्याय दिलाना श्रीकृष्ण का परम कर्तव्य था और इसमें राधारानी उनकी संदेशवाहक बनीं। एक लोकोक्ति भी है प्रत्येक सफल इंसान के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है। आइए समाज में जो हम इच्छा स्वयं के लिए रखते है मातृशक्ति के हर रूप के लिए वही सोच रखें।

***

डा. लक्ष्मीकान्त विमल*

दुर्गा-सप्तशती में

शक्ति का दार्शनिक स्वरूप

दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय में ब्रह्माकृत निद्रा देवी की स्तुति है। इस लघुकाय अंश में शक्ति का व्यापक वर्णन अद्वैत वेदान्त तथा विशिष्टाद्वैत, दोनों के सन्दर्भ में हुआ है। इस अंश के टीकाकारों ने सृष्टि से पूर्व हरिनेत्रकृतालया देवी को आद्याशक्ति मानकर जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विनाश के कारण के रूप में व्याख्यायित किया है। मूलतः दर्शन के अधीती विद्वान् लेखक ने इस अंश के आधार पर शक्ति-विमर्श की दार्शनिक विवेचना की है।

प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष में दुर्गासप्तशती का पाठ करने की परम्परा विद्यमान है। जिस प्रकार भगवद्गीता अत्यन्त लोकप्रिय है, वैसे ही यह दुर्गासप्तशती अत्यधिक लोकप्रिय है। यह मार्कण्डेय पुराण का अंश है। लोक में धन और धनवान्, गुण और गुणवान् का प्रचुर प्रयोग होता है। धन एक वस्तु है वह जिसके पास होता है वही धनवान् कहलाता है। इस स्थिति में धन और धनवान् में अभेद हो जाता है। यहाँ भी शक्ति और शक्तिमान् में अभेद है। शक्ति जगज्जननी हैं और शक्तिमान् भगवान् विष्णु स्वयं हैं। यहाँ भी दोनों में शक्तिस्वरूपा दुर्गा और भगवान् विष्णु में अभेद सम्बन्ध है। दुर्गासप्तशती के द्वितीय अध्याय में सभी देवताओं की शक्तिस्वरूपा दुर्गा हैं, एवं देवताओं ने उनको अपना- अपना अस्त्र भी प्रदान किया है। दुर्गा को भगवान् विष्णु की शक्ति कहा गया है- **त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या।**[1]

इस प्रकार इस शोधपत्र में दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय में ब्रह्मा द्वारा वर्णित स्तुति के परिप्रेक्ष्य में भगवती दुर्गा का दार्शनिक स्वरूप प्रस्तुत करने प्रयास है।

सृष्टि, पालन और संहार

दर्शनशास्त्र में मुख्य विवेच्य के रूप में सृष्टि-संहार सिद्धान्त का विश्लेषण किया गया है। यही दर्शन का प्रसिद्ध सिद्धान्त कार्यकारणवाद है। इस संसार की रचना कैसी हुई है, इस संसार को कौन धारण करता है अथवा पालन करता है, फिर यह संसार प्रलय में कैसे प्राप्त हो जाता है। यह तथ्य आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए एवं सभी जिज्ञासुओं के लिए कौतूहल का विषय बना हुआ है। जिस प्रकार समाज में घड़ा मिट्टी से बनता है और वही घड़ा कुछ समय के बाद अपने कारण मिट्टी में विलीन हो जाता है। घड़ा की सृष्टि, कुछ समय के लिए उसकी स्थिति और अन्त में उसका नष्ट होना प्रलय है। यही स्थिति इस जगत् के साथ भी है।

इस जगत् को धारण करने वाली दुर्गा हैं, वही इस जगत् की सृष्टि करती है, हे देवि! तुम इस जगत् को पालन पोषण करती हो, तुम ही अन्तकाल में इस जगत् को

[1] दुर्गासप्तशती 11.5

* मूलतः भारतीय दर्शन के परम्परागत अध्येता, वरिष्ठ शोधाध्येता, श्री शंकर शिक्षायतन, नई दिल्ली।

अपने में लीन कर लेती हो। यहाँ स्पष्ट शब्दों में सृष्टि, स्थिति और संहार का वर्णन है।

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।[2]

इस सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख उपनिषद् में प्राप्त होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि जिससे निश्चय ही ये सब भूत (प्राणी) उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें लीन होते हैं वही तत्त्व ब्रह्म है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[3]

उपनिषद् में सृष्टिपरक वाक्य, स्थितिपरक वाक्य और संहारपरक वाक्यों का सर्वत्र दिग्दर्शन होता है। अक्षर से यह विश्व प्रकट होता है- **अक्षरात् संभवतीह विश्वम्।**[4]

दुर्गा का विभूति स्वरूप

जिस प्रकार भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने विश्वरूप का वर्णन किया है। उसी प्रकार यहाँ भी ब्रह्मा के मुख से भगवती दुर्गा के विविध स्वरूपों का निरूपण किया गया है।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।[5]

दुर्गा महाविद्या हैं। नागेशभट्ट ने महाविद्या में विद्या को माना है जबकि आचार्य शान्तनु की शान्तनवी टीका में अविद्या पद को ग्रहण किया है। यहाँ कर्मधारय समास है। महती चासौ विद्या महाविद्या अर्थ है समस्त विद्याओं का मूलकेन्द्र, यह अर्थ सर्वथा प्रसिद्ध है। परन्तु यहाँ दुर्गासप्तशती के टीकाकार आचार्य शान्तनु शान्तनवी नामक टीका में विद्या शब्द को नहीं स्वीकार कर अपितु अविद्या शब्द को स्वीकार किया है। अविद्या को अनिर्वचनीय कहा है और सृष्टि संरचना के प्रपञ्च को जानने वाली है। विद्या और अविद्या शब्द से समास करने पर एक ही महाविद्या पद बनेगा **- महती अविद्या अनिर्वचनीया अविद्या प्रपञ्च-परिज्ञान-रूपा असि।**[6]

अद्वैतवेदान्त में विद्या ज्ञान का पर्याय है और ज्ञान को ब्रह्म कहा गया है। यहाँ अविद्या को स्वीकार करना अधिक संगत लगता है। अद्वैतवेदान्त के महान् आचार्य मिथिलारत्नभूत षड्दर्शन –टीकाकार अविद्यावादी आचार्य वाचस्पति मिश्र हैं। उन्होंने भामती में सर्वत्र अविद्या को ही रखा है। भामती के मंगलपद्य में 'अनिर्वाच्याविद्या'। जो शान्त, शुद्ध, बुद्ध परम तत्त्व होता है उससे सृष्टि नहीं होती है। अपितु उसी शुद्ध तत्त्व में सृष्टि की इच्छा से और सत्त्व, रज और तम के संमिलन से सृष्टि होती है। इस स्थिति में प्रकृति का पर्याय होने के आधार पर अविद्या शब्द सर्वथा

[2] दुर्गासप्तशती 1.75-77
[3] तैत्तिरीयोपनिषद् 3.1.1
[4] मुण्डकोपनिषद् 1.1.7
[5] दुर्गासप्तशती 1.77-78
[6] दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58

सुसंगत है। महामाया शब्द अर्थ करते हुए आचार्य शान्तनु लिखते हैं कि अनात्मा में आत्मबुद्धि और आत्मा में अनात्मबुद्धि करनी चाहिए- **अनात्मनि आत्मबुद्धिः आत्मनि अपि अनात्मबुद्धिः माया।**[7]

इसी तथ्य को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि संपूर्ण संसार को श्रीकृष्ण में और श्रीकृष्ण में संसार को देखना चाहिए। यह आत्मसाक्षात्कार का अद्भुत सिद्धान्त है- **यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।**[8]

महामेधा शब्द पर टीका करते हुए आचार्य शान्तनु कहते हैं कि किसी वस्तु के ज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि एवं अधारण करने वाली बुद्धि अमेधा है- **महती धारणावती धीः बुद्धिः, महती अमेधा अधारणावती धीः।**[9]

महास्मृति शब्द पर भी वैसी ही व्याख्या उपलब्ध है। यहाँ स्मृति का अर्थ ध्यान है। भगवती का स्वरूप ध्यानरूप और अध्यानरूपा दोनों ही है- **महास्मृतिः ध्यानरूपा, महती अस्मृतिः अध्यानरूपा।**[10]

महामोहा में भी यही स्थिति है। मोह का अर्थ ममता है। देवी ममता और अममता दोनों रूप वाली हैं- **महा ममता महा अममता ।**[11]

आचार्य शान्तनु ने देवी के क्रमशः विद्या-अविद्या, मेधा-अमेधा, स्मृति-अस्मृति इन दोनों का विपरीतार्थक युगल चल रहा है। इसका प्रमाण दुर्गासप्तशती में मिलता है। इसी प्रसंग में भगवती को सत् (सत्य) असत् (असत्य) दोनों ही स्वरूप का ग्रहण किया गया है- **सदसद्वाऽखिलात्मिके ॥**[12]

गीता में भी भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि मैं सत् और असत् दोनों स्वरूप वाला हूँ- **अमृतं चैव मृत्युं च सदसच्चाहमर्जुन।**[13]

महादेवी का अर्थ सभी देवताओं की शक्तिस्वरूपा और महासुरी में हिरण्याक्ष आदि असुर में जो शक्ति है वह शक्ति इन्हीं की है, ऐसा नागेशभट्ट की टीका में उल्लिखित है- **सकल-शक्ति-रूपा, महासुरी हिरण्याक्षादि-शक्ति-रूपा।**[14]

कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि के अर्थ को स्पष्ट करने में टीकाकारों की दृष्टि सर्वथा दर्शनीय है- **कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।**[15]

कालरात्रि में काल का अर्थ मरण है। जिस रात्रि में लोग मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह कल्पान्तरात्रि है- **कालो मरणं तदुपलक्षिता रात्रिः। कल्पान्तरात्रिः।**[16]

शान्तनवी टीका के अनुसार संहार करने वाली रात्रि है। समय को तोड़ने वाली है। अथवा जगत् जहाँ पर प्रलय को प्राप्त होता है वह कालरात्रि है- **जगत्संहारकारिणी यामभङ्गिनी, यत्र प्रलीयते जगत् सा कालरात्रिः।**[17]

7 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58
8 गीता 6.30
9 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58
10 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58
11 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58
12 दुर्गासप्तशती 1.82
13 गीता 9.19
14 दुर्गासप्तशती, नागेशटीका 1.58
15 दुर्गासप्तशती 1.79
16 दुर्गासप्तशती, चतुर्धरी टीका 1.79
17 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.58

टीकाकारों ने कालरात्रि एवं मोहरात्रि दोनों को एक ही अर्थ का प्रतिपादक माना है। चतुर्धरमिश्र की चतुर्धरी टीका में ईश्वर की रात्रि को महारात्रि कहा है, ब्रह्मा के द्वारा निर्धारित मरण स्वरूप महारात्रि है।मीमांसादर्शन में खण्डप्रलय और खण्डसृष्टि की बात की गयी है। कालरात्रि में आंशिक प्रलय होता है और महारात्रि में संपूर्ण सृष्टि का संहार होता है। इसी भाव को यहाँ उपस्थापित किया गया है।

महतः ईश्वरस्य रात्रिः महारात्रिः। महतः ब्रह्मणोपलक्षिता रात्रिः। कालो मरणं तदुपलक्षिता रात्रिः। कल्पान्तरात्रिः।[18]

शान्तनवी टीका इसी तथ्य को उद्घाटित करता है कि चतुर्मुख ब्रह्मा को प्राप्त होने वाली रात्रि- **यत्र चतुर्मुखो मुक्तिम् अगात्।**[19]

नागेशभट्ट ने स्पष्ट रूप में प्रलयरात्रि ही अर्थ किया है- **महारात्रिः प्रलयरात्रिः।**[20]

इस प्रकार कालरात्रि और महारात्रि एक ही अर्थ के द्योतक हैं। मोहरात्रि का अर्थ ममता में लगाने वाली रात्रि का नाम है- **ममतागर्त-मोहगर्त-पातिनी।**[21]

सांख्यदर्शन में पुरुष-प्रकृति का प्रधानता से वर्णन किया गया है। भगवती दुर्गा स्वयं प्रकृति है। प्रकृति का लक्षण है जिसमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण विद्यमान् अरहते हैं वही प्रकृति है- **प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय-विभाविनी ॥**[22]

सांख्यदर्शन में प्रधान और अव्यक्त नाम से प्रकृति प्रसिद्ध है- **सत्त्व-रजस्तमः साम्यावस्था अव्यक्ताख्या प्रधानम्।**[23]

प्रस्तुत प्रसंग में भगवती को क्रमशः अनेक स्वरूपों का वर्णन भिन्न भिन्न नामोंके द्वारा किया गया है। श्री, ईश्वरी, ह्री, बुद्धिः, लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षान्ति है। भगवती के इन नामों में ह्री और लज्जा एक ही अर्थ का वाचक है। यहाँ टीकाकारों ने ह्री को बीजाक्षर ह्रीम् के रूप में व्याख्यायित किया है।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोध-लक्षणा॥[24]

लज्जा-पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।

भगवती अपने हाथ में जिन सांकेतिक पदार्थ को धारण करती हैं उनका सांकेतिक वर्णन यहाँ सुललित शब्दों के माध्यम से उपस्थापित किया गया है। अलंकार की दृष्टि से एवं संस्कृतभाष शिक्षण की दृष्टि से अत्यन्त ही उपादेय है। जिस प्रकार इन् प्रत्यय लगाकर गुणी बनता है ठीक उसी प्रकार इन् प्रत्यान्त शब्दों का स्त्रीलिंगरूप पदचारुता को बना रहा है। ये शब्द इस प्रकार हैं- खड्गिनी, शूलिनी, गदिनी, चक्रिणी, शङ्खिनी और चापिनी।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥[25]

18 दुर्गासप्तशती, चतुर्धरी टीका 1.59
19 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.59
20 दुर्गासप्तशती, नागेशटीका 1.59
21 दुर्गासप्तशती, नागेशटीका 1.59
22 दुर्गासप्तशती 1.78
23 दुर्गासप्तशती, शान्तनवी टीका 1.59
24 दुर्गासप्तशती 1.79
25 दुर्गासप्तशती 1.80

शङ्खिनी चापिनी बाण-भुशुण्डी परिघाऽऽयुधा।

संस्कृत एवं अन्यभाषाओं में भी उत्कृष्टता द्योतक प्रत्यय लगते हैं। संस्कृत में यह तरप् और तमप् प्रत्यय होते हैं। जैसे लघु से लघुतर और लघुतम बनता है। उसी प्रकार यहाँ सौम्य, सौम्यतरा एवं सौम्यतमा का प्रयोग है। यद्यपि छन्द की दृष्टि से सौम्यतमा नहीं है अपितु जितने भी सौम्य स्वरूप वाले हैं उन से भी विशिष्ट सुन्दरी हैं- **सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥**[26]

यज्ञात्मक स्वरूप

पूजापाठ के वर्तमान समय में हवन का अत्यधिक प्रचलन है। देवता के लिए जो आहुति दी जाती है वह स्वाहा है। अग्नि की पत्नी का नाम स्वाहा है। पितर के लिए जो आहुति दी जाती है वह स्वधा है। अथवा पितृपत्नी के रूप में स्वाहा है। वषट्कार शब्द का अर्थ यज्ञ। जिसस्थान पर यह वषट् शब्द किया जाता है वह वषट्कार है।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।[27]

ॐकार का स्वरूप

मुण्डकोपनिषद् में ॐकार का वर्णन मिलता है। योगसूत्र में पतञ्जलि ने कहा है कि ईश्वर का वाचक शब्द ही प्रणव है। (तस्य वाचकः प्रणवः) ॐकार में क्रमशः अ-उ-म् इतने वर्ण हैं। तीन मात्रा वाली देवी हैं। वैदिक मन्त्र के पाठ में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का संबन्ध है। यही त्रिधामात्रा है। दंशोद्धार नामक संस्कृत टीका में त्रिधा में जो धा है उसका अर्थ धाम किया है। यह धाम सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के रूप में यही देवी विद्यमान हैं।

त्रीणि धामानि तेजांसि सूर्य-चन्द्राग्नि-रूपाणि भुवनानि वा, आसमन्तात् त्रायते इति त्रिधामात्रा स आत्मा यस्या सा पालनरूपा असि।

त्रिधा शब्द से अ-उ-म् का भी ग्रहण किया गया है। जिस का कभी नाश नहीं होता है वह अक्षर कहलाता है। क्षर और अक्षर में क्षर संसार है क्योंकि इसका भगवती में लय होता है।

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता। अर्धमात्रा स्थिता नित्या...

वाणी से परे भगवती का स्वरूप

उपनिषद् में कहा गया है कि जहाँ से वाणी मन के साथ लौट आती है वही परम तत्त्व है- **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**[28]

भगवती का स्वरूप अनिर्वचनीय है। वाणी के द्वारा उनको प्राप्त नहीं किया जा सकता है- **याऽनुच्चार्याविशेषतः॥**[29] **तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।**

[26] दुर्गासप्तशती 1.81
[27] दुर्गासप्तशती 1.73
[28] तैत्तिरीयोपनिषद्
[29] दुर्गासप्तशती 1.74

शेष पृ. 45 पर

श्रीराम का पट्टाभिषेक

(उत्तर भारतीय कर्मकाण्ड की दृष्टि से विवेचन)

पं. मार्कण्डेय शारदेय*

यूरोपीयन विद्वानों ने आर्य-संस्कृति और द्राविड़-संस्कृति का भेद-भाव फैलाकर उत्तर एवं दक्षिण भारत को अलग दिखाने का भरपूर प्रयास किया। लेकिन सच्चाई है कि सनातन धर्म के परिप्रेक्ष्य में हम आसेतु-हिमाचल एक हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है- श्रीरामपट्टाभिषेक की विधि। पूर्व अंक में इसका मूलपाठ पहली बार सम्पादित होकर प्रकाशित किया गया। यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध कर्मकाण्ड है, लेकिन इस विधि की तुलना जब उत्तर भारत की कर्मकाण्ड-परम्परा से की जाती है तो पाते हैं कि दोनों परम्पराएँ अपने मूल रूप में एक ही है। अब हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हमारा सनातन धर्म आसेतु-हिमालय एक है।

धर्मायण की अंक संख्या 105 में डा. ममता मिश्र दाश द्वारा सम्पादित श्रीराम-पट्टाभिषेक विधि पढ़कर मन प्रसन्न हुआ। प्रसन्नता का मुख्य कारण इसमें प्राप्त विधान हैं। यहाँ श्रीरामयज्ञ का दाक्षिणात्य विधान प्रस्तुत है। इसे देख विचार आया कि औदीच्य अपनी परम्परा के साथ साम्य-वैषम्य पर दृष्टिपात किया जाए।

हमारे विधान तो वेदों से ही चले हैं, इसलिए भिन्नता का स्थान नहीं। तो भी, देश-काल और आचार्य-परम्परा के कारण कुछ न कुछ अन्तर तो आ ही जाता है। इसी कारण **चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी** की तरह सामान्य कर्मकाण्डों में क्षेत्रीय, जातीय व पारिवारिक परिपाटी में समानता नहीं रहती।

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारी जड़ वेद हैं। इस कारण हमारा कोई धार्मिक विधान शुभ मुहूर्त में आयोजित होता है। वेदचक्षु ज्योतिष का प्रादुर्भाव ही इसी के लिए हुआ था कि उसकी सहमति में शुभता का आश्रय हो। इसीलिए यहाँ भी **शुभे दिने सनक्षत्रे चन्द्र-तारा-बलान्विते.....।** का उल्लेख है। वैष्णव व श्रीरामोत्सव की जो सामान्य प्रक्रिया है, तदनुरूप ही यहाँ भी मण्डप, मण्डपद्वार, वैष्णव चिह्नांकित ध्वजा-पताका बताए गए हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो इसमें कहीं-कहीं छूट, कुछ-कुछ अशुद्धिपूर्ण टंकण एवं अस्पष्ट पदों के बावजूद एक समग्र पूजाविधान है। इसी का एक नाम पट्टाभिषेक है।

हमारे यहाँ उपवास व उपासना के दो तात्पर्य हैं; एक तो मन, वाणी एवं कर्म से आराध्य के करीब रहना और दूसरा **सर्वभोग-विवर्जितः**। यानी, भौतिक सुख से दूर रहना। ये दोनों एक दूसरे के पूरक एवं योग के चरमोत्कर्ष के कारक हैं। देवस्थान को स्वच्छ करना, इष्टदेव की प्रिय वस्तुओं का संचय करना, विधिवत् वस्तुओं का समर्पण, मन्त्रों व स्तुतियों का जप-पाठ तथा उनको स्वयं में उतारना और उनमें स्वयं भी उतरना; यही तो साधना है, आराधना है, उपासना है। इन्हीं

*सनातन ज्योतिष, पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ, बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना-800007 मो. 8709896614, Mail : markandeyshardey@gmail.com

"क्षेत्रीयता एवं आचार्य-परम्परा में कुछ न कुछ अन्तर आता ही है। इसलिए यह कोई नई विधि न होकर हमारी वैदिक-तान्त्रिक प्रक्रिया से सम्मिश्रित जो अद्यतन पूजाविधि है, उसी का एक रूप यह भी है। श्रीरामयज्ञ के औदीच्य या यह दाक्षिणात्य विधान हो, दोनों में श्रद्धा का योग आवश्यक है। को बड़ छोट कहत अपराधू की स्थिति है। पुनश्च, प्रारम्भिक अंश में आचार्यादि वरण में वरणीयों की जो योग्यता बताई गई है, वह सर्वत्र सम्मान्य है। सम्प्रदाय-विशेष के सुयोग्य आचार्य ही देवताविशेष के यज्ञ के आचार्यत्व के अधिकारी हैं।

पाँच कृत्यों को परिभाषित करते हुए क्रमशः अभिगमन, उपादान, इज्या, अभ्यास तथा योग कहा गया है।ये ही तो सत्यरूपी ब्रह्म की ओर ले जानेवाले कायिक, वाचिक, मानसिक एवं सांसार्गिक कर्म हैं। इसलिए उपवास व उपासना में सबका समाहार है। **श्रीराम-पट्टाभिषेक-विधि**: में भी इन पाँचों अंगों के दर्शन होते हैं।

शंख, चक्र, गदा, धनुष, बाण, हनुमदंकित तथा गरुडांकित ध्वज-पताकादि से एवं नानाविध पुष्पादि से पूजास्थान को समलंकृत करना, पीठनिर्माण- जैसे बाह्य व अभिगमन के अंग हैं। हाँ, उपादान के अन्तर्गत पूजन-सामग्री का संकलन है, जो यहाँ **गन्ध-पुष्पाक्षतैः वस्त्रैः चतुर्भिः कलशैः तीर्थं नद्याः समाहृतम्** आदि से स्पष्ट है। इज्या, अर्थात् पूजाविधान में आचार्यादि-वरण, कलशस्थापन एवं पूजन, सर्वतोभद्र- मण्डलपूजन, समस्तावरण सहित ससीत श्रीरामपूजन व शालग्राम- पूजन, स्नपन, हवन आदि हैं। अभ्यास के अन्तर्गत रामायण का पाठ और श्रवण हैं। योग तो भक्ति एवं कर्म के माध्यम से प्रभु में लीन हो जाना ही है। ये कृत्य उसी ओर ले जाने के लिए ही हैं।

अब सर्वप्रथम हम इस दाक्षिणात्य पद्धति पर थोड़ी दृष्टि डालें। यहाँ कहा गया है कि अपने घर से उत्तर की ओर व घर के उत्तरी भाग में सुन्दर यज्ञमण्डप बनाएँ। उसपर चँदोवा लगाएँ। तोरणद्वार बनाएँ। चारों द्वारों को ध्वजा-पताका से सुसज्जित करें। मध्य में गूलर की चार हाथ लम्बी-चौड़ी चौकी पर सर्वतोभद्र मण्डल बनाएँ। अभिषेक-मन्त्रों का पाठ करनेवाले चार, आठ या बारह सुयोग्य ब्राह्मणों का वरण करें। इसके बाद कलश-स्थापन करें। सर्वतोभद्र मण्डल के देवताओं का पूजन करें। उसी के मध्य चावल का ढेर रख कलश रखें। हाथ-पाँव धोकर शुद्धतापूर्वक तारक मन्त्र (ऊँ रां रामाय नमः) का जप करते हुए उस कलश के पास ही सिंहासन पर श्रीराम की प्रतिमा व शालग्राम रखें। इसके बाद ससंकल्प विविध द्रव्यों से समन्त्रक पट्टाभिषेक करें। अभिषेक के बाद समलंकृत कर विधिवत् पूजन करें। उनके वामभाग में जानकी की दक्षिणभाग में लक्ष्मण की प्रतिष्ठा कर अर्चन करें। श्रीराम यन्त्र बनाकर आवरण-पूजा करें।अनन्तर शान्ति होम, बलिप्रदानादि कर विसर्जन करें।

अब हम औदीच्य पद्धति का अवलोकन करें। सामान्यतः सभी पूजाविधियों में आत्मशुद्धि, आसनशुद्धि, दीपप्रज्वलन के बाद स्वस्तिवाचन संकल्प, गणेशाम्बिका-पूजन (मिथिलांचल में सूर्यादिपंचदेवतापूजन), प्रधान कलश का स्थापन, पुण्याह-वाचन, मण्डपपूजन, षोडशमातृतृका एवं सप्तमातृकापूजन, आभ्युदयिक श्राद्ध, आचार्यादि वरण तथा रक्षाविधान से वेदीपूजन की विशेष प्रक्रिया चलती है। यों तो पद्धतियों में अग्निस्थापन के बाद ही नवग्रह-पूजा है, पर प्रायः पंचांग-पूजन में ही नवग्रह-मण्डल की भी विधि पूर्ण हो जाती है और हवन के बाद तथा पूर्णाहुति के पूर्व दिक्पाल-बलि, नवग्रहार्थ बलि के अनन्तर क्षेत्रपाल- बलि होती है।

अब श्रीरामपूजन की बात करें तो उपर्युक्त कृत्यों के बाद **नीलाम्बुज-श्यामल- कोमलांगम्...** से श्रीराम का तथा **अरुणकमल- संस्था तद्रजः पुंजवर्णा** ...से, अथवा **उद्भवस्थिति-संहार-कारिणीं** से सीताजी का ध्यान, पुरुष एवं श्रीसूक्त के मन्त्रों के साथ-साथ अन्य विशिष्ट मन्त्रों से आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, जलस्नान, दुग्धस्नान, दधिस्नान, घृतस्नान, मधुस्नान, शर्करा-स्नान, पंचामृतस्नान, गन्धोदक-स्नान, उद्वर्तन- स्नान तथा सुगन्धित द्रव्यों से स्नान के बाद महाभिषेक विहित है। इस महाभिषेक में विष्णुसूक्त के साथ ही श्रीसूक्त से स्नपन होता है।इसके बाद शुद्ध स्नान कराकर वस्त्र, यज्ञोपवीत, उपवस्त्र, चन्दन, अक्षत, पुष्प एवं माला एवं तुलसीदल अर्पण के बाद अंगपूजा होती है।

आवरण-पूजा के अन्तर्गत प्रथम आवरण में सीता-रामचन्द्र, माहेश्वरी, महालक्ष्मी, महादुर्गा, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, सर्वमातृका, सिद्धि, बुद्धि, लोकमातृका, महादेवी, देवमातृका, वासुदेव, लोकपाल, मनु, वसिष्ठादि, अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता, ब्रह्मा, नवग्रह, दशदिक्पाल एवं गौरीपति का अर्चन है। द्वितीयावरण में अयोध्या, सरस्वती, गंगा, भूशक्ति, वह्निबीज, केशरी, सुषेण, ऋक्षराज, अंगद, सुग्रीव, विमलादि शक्ति; तृतीयावरण में सपत्नीक लक्ष्मण, सपत्नीक भरत, सपत्नीक शत्रुघ्न एवं हनुमान की पूजा का विधान है।इस तरह समस्त आवरणार्चन हैं।

अब आइए, तुलनात्मक अध्ययन करें। हमारे यहाँ वाराणसेय परम्परा में किसी यज्ञ का आरम्भ गणेशाम्बिका – पूजन से होता है। वहीं मैथिल-परम्परा में सूर्यादि पंचदेवता के पूजन से। लेकिन यहाँ आचार्यादि-वरण के अनन्तर कलशार्चन से शुरूआत है। पुनः यहाँ यों तो दीपप्रज्वलन (दीपान् प्रज्वालयेत् तत्र चतुर्दिक्ष्वतिशोभितान्) की बात आई है, पर रक्षादीप का विधान नहीं।यहाँ स्वस्तिवाचन, पंचांगपूजन- जैसा कुछ नहीं। यहाँ कलशपूजन के बाद सर्वतोभद्र मण्डल, तदनन्तर **रामं रत्नमये पीठे**.. से सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर औदीच्यवत् पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क आदि समर्पण कर श्रीरामाभिषेक में दोनों मतों में समानता है। हाँ, औदीच्य विधि में सामान्यता है तो यहाँ **पयःशर्कर-मिश्राभ्यां मध्वाज्यैः अभिषेचयेत्।.....॥नारिकेलोदकेनापि तथा तालफलाम्बुना॥ गजद्रव्यं च बहुभिः तथा गन्धोदकेन च॥ ऐक्षवोदकेनापि कर्पूरादि- सुगन्धिना**। इत्यादि निर्देशों में स्नानीय द्रव्यों का बाहुल्य सामान्य से विशेष को ही स्थापित करता है।हाँ, यहाँ **आदौ पुरुषसूक्तेन सूक्ताभ्यां च श्रियः भुवः। आपो हि ष्ठेत्यादि-मन्त्रैः विष्णोर्नुकमिति क्रमात्**॥ कहकर क्रम निर्देश है, जिससे स्पष्ट है कि पुरुषसूक्त, श्रीसूक्त की सोलह-सोलह ऋचाओं से, अनन्तर **आपो हि ष्ठा**... (ऋग्वेद-10.9.1-3) आदि तीन ऋचाएँ एवं विष्णुसूक्त (ऋग्वेद-1.54.) से अभिषेक बताया गया है।

क्षेत्रीयता एवं आचार्य-परम्परा में कुछ न कुछ अन्तर आता ही है। इसलिए यह कोई नई विधि न होकर हमारी वैदिक-तान्त्रिक प्रक्रिया से सम्मिश्रित जो अद्यतन पूजाविधि है, उसी का एक रूप यह भी है। श्रीरामयज्ञ के औदीच्य या यह दाक्षिणात्य विधान हों, दोनों में श्रद्धा का योग आवश्यक है। **को बड़ छोट कहत अपराधू** की स्थिति है। पुनश्च, प्रारम्भिक अंश में आचार्यादि वरण में वरणीयों की जो योग्यता बताई गई है, वह सर्वत्र सम्मान्य है। सम्प्रदाय-विशेष के सुयोग्य आचार्य ही देवताविशेष के यज्ञ के आचार्यत्व के अधिकारी हैं। वर्तमान में सभी आचार्य सभी तरह के यज्ञ करा रहे हैं, यह मशीनीकरण है। मशीनीकरण इस मायने में कि मन्त्र याद है या पुस्तकों में हैं। पुस्तकें देखकर पूजा करा लिया करते हैं। यदि इष्टदेवता की पूजा हो तो श्रद्धा भी अवश्य तरंगायित होगी। यदि दक्षिण में यह निकष है तो अवश्य स्तुत्य है।

***

(धर्मायण की अंक संख्या 50, जुलाई-सितम्बर, 1999ई. में पूर्व प्रकाशित विशिष्ट आलेख)

महाशक्ति श्री श्री माँ

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

म. म. गोपीनाथ कविराज (जन्म– 7 सितम्बर, 1884 एवं निधन– 12 जून, 1976ई.) भारतीय तन्त्र-साहित्य के प्रख्यात सम्पादक एवं अध्येता हुए। मूलतः बंगाल में उत्पन्न कविराज जी वाराणसी में 1923 ई. से 1937 ई. तक गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य रहे। इस समय इन्होंने संस्कृत के अनेक आगम-ग्रन्थों का सम्पादन किया तथा तन्त्र -साहित्य से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों की रचना की। प्रस्तुत आलेख उनकी प्रसिद्ध रचना 'तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि' नामक ग्रन्थ से साभार उद्धृत है।

महाशक्ति जगदम्बा का परम रूप अखण्ड और स्वयंप्रकाश चैतन्य है- इसका सिद्ध योगियों ने संवित् अथवा प्रतिभा के रूप में वर्णन किया है। किसी देश अथवा किसी काल में किसी कारण से भी इस स्वरूप का अपलाप नहीं होता- यह अपरिच्छिन्न प्रकाशात्मक है। यह विचित्र दृश्यों के आकार में भासमान होता है- ये आकार मूल में सभी क्षणिक हैं, किन्तु इस क्षणिक प्रतिभास में ही उनका स्वरूप पर्यवसित नहीं होता। यदि वह होता तो स्मरण, अनुसन्धान आदि अन्तःकरण के व्यापारों की कोई सार्थकता नहीं रहती। भगवती का जो परम स्वरूप है वही सामान्य ज्ञानात्मक परा प्रतिभा है। वही मूल रूप है एवं देश, काल, आकार, निमित्त आदि द्वारा अनवच्छिन्न है। इसको आश्रय करके ही प्रत्यक्षसिद्ध समग्र जगत् की उत्पत्ति होती है, स्थिति होती है और लय होता है। नवीन-नवीन रूपों में आभासमान होना ही उत्पत्ति है, आभास-धारा की विषयता ही स्थिति है और आभास की अविषयता ही संहार है। यह सब दृश्य अथवा पदार्थ प्रमाताओं के प्रति एक के बाद एक भासमान होते हैं सही, किन्तु मूल स्वरूप से पृथक् रूप में भासमान नहीं होते। भूतल पर स्थित घट जैसे भूतल से पृथक् रूप में दृष्टिगोचर होता है, यह उस प्रकार का नहीं है वरन् दर्पण में प्रतिबिम्बित रूप जैसे दर्पण से अभिन्न रूप से प्रतिभात होता है, यह उसी प्रकार का है। अर्थात् यह विश्व चिदात्मा में प्रतिबिम्बित होकर चिदात्मा के साथ अभिन्न रूप से ही प्रकाशमान होता है -जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय का भान उस परम चैतन्य स्वरूप में उससे अव्यतिरिक्त रूप से होता है।

इस अखण्ड महाप्रकाश में विश्ववैचित्र्य का भान कैसे होता है? इस प्रश्न का समाधान करने का यदि यत्न किया जाय तो समझ में आ सकेगा कि यह उनके स्वातन्त्र्य से ही होता है। यही माया का यथार्थ स्वरूप है। मायारूप निमित्त को आश्रय कर परसंविद्रूप आधार में अनन्त वैचित्र्य फूट उठता है। इस जगदाकार देह में अज्ञानी अर्थात् जो आत्मज्ञानहीन है अथवा जिसका मन अविद्या द्वारा आवृत है वह विश्वरूप अनन्त आकारों का दर्शन करता है। किन्तु ये सब आकार जिसका आश्रय कर

'तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि' से साभार उद्धृत। ग्रन्थ-प्रकाशकः बिहार राष्ट्रभाषा- परिषद्, पटना

"यह परा संवित् अथवा आत्मा ही महाशक्ति 'माँ' हैं- ये सर्वदा विकल्पविहीन हैं। दर्पण जैसे सर्वदा ही दर्पण है. प्रतिबिम्ब चाहे भासे अथवा न भासे दर्पण जैस दर्पण ही रहता है- जैसे प्रपञ्च के संहारकाल में चैतन्य निर्विकल्प रहता है वैसे ही सृष्टि अथवा प्रपञ्च के प्रकाश काल में भी वह निर्विकल्प ही रहता है। सृष्टि और संहार में चैतन्य में कोई विकार नहीं आता। चैतन्य सदा चैतन्य ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

प्रकाशित होते हैं, उसे नहीं देख पाता। अविद्या माया की ही दूसरी अवस्था है। कमला रोग से पीडित रोगी जैसे नेत्रों के विकार से सफेद शंख को पोला देखता है, अज्ञानी का जगत्-दर्शन भी कुछ अंशों में वैसा ही है। विद्या के प्रभाव से अविद्या की निवृत्ति होने पर अर्थात् योग-अवस्था प्राप्त होने पर उस संविद्रूप तत्त्व का दृश्यमान द्वैताकारवर्जित किंवा निर्विकल्पक रूप से भान होता है। अवश्य उस अवस्था में भी भास्य और भासकरूप द्वैत रहता है, ऐसी प्रतीति हो सकती है, किन्तु वास्तव में चिद्रूप आत्मसत्ता में देहादि दृश्य और भास्य का लेशमात्र भी नहीं रहता वह विशुद्ध अहंरूप में अर्थात् शुद्ध द्रष्टा के रूप में भासता है। आत्मतत्त्व दश और काल क द्वारा अवच्छिन्न न होने के कारण गम्भीर और निश्चल समुद्र के तुल्य निश्चल स्वरूप में अर्थात् अनन्त अद्वय रूप में योगि को प्रकाशित होता है।

जो परमात्मतत्त्ववेत्ता भक्त हैं वे इस विशुद्ध आत्मतत्त्व का ही भजन करते हैं। इस भजन में कापट्य नहीं है एवं कृत्रिमता भी नहीं है, क्योंकि स्वभावतः आत्मा ही तो सबकी अपेक्षा प्रिय है। इसका नाम अद्वैत भक्ति है। यह अद्वितीय परमात्मा वस्तुतः सभी का अपना आत्मा है। वहाँ सेव्यसेवक भाव नहीं है। किन्तु ज्ञानी भेदभाव का आहरण कर सेव्य-सेवक भाव की रचना करते हैं। वे आत्मस्वरूप अद्वय पद की प्रत्यक्ष उपलब्धि करके भी स्वभाव अथवा चित्त की सरसता वश ऐसा करते हैं। वासना के वैचित्र्य से ही ऐसा होता है। कोई कोई ज्ञानी पूर्व संस्कारवश जैसे राज्य शासनादि करते हैं, वैसे ही कोई कोई उसी कारण से भजन भी करते हैं।

भगवती का परम रूप केवल भासकमात्र है, किन्तु भास्य नहीं है। वह भास्वरूप है, वह अन्य वस्तु के संग में संसृष्ट नहीं है इस कारण एकरसात्मक है, इसलिए पूर्ण है, अतएव वह देश और काल का भी व्यापक है। यदि भास्यरूप आकार भारूप भासक से भिन्न होता तो उसका भान ही नहीं होता। भान होना भास्य वस्तु का धर्म नहीं है, क्योंकि यदि वह भास्य का धर्म होता तो सर्वदा ही भास्य का भान होता। उसके अलावा आत्मगत रूप में भान का अनुभव भी न होता।

यह जो भान अथवा प्रकाश की बात कही गई है, यही परमचैतन्यरूपा परमेश्वरी महाशक्ति जगदम्बा हैं, यह एक और अद्वितीय हैं, यह द्वैत का लेशमात्र भी सहन नहीं करतीं। इस अखण्ड चिदेकरस स्वरूप में स्वातन्त्र्यवश वैचित्र्यमय विश्व प्रतिभासमान होता है। विश्व ही द्वितीय के रूप में प्रतिभात होता है- वस्तुत: वह एक से अभिन्न है, वही प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब चाहे रहे अथवा न रहे चैतन्य का स्वरूप सर्वदा ही निर्विकल्प है। सृष्टिकाल में प्रतिबिम्ब भासता है, किन्तु प्रलय- काल में वह नहीं भासता। इससे प्रतीत होता है कि संवित् स्वरूपतः सर्वदा निर्विकल्प एकरस रहने पर भी स्वातन्त्र्यवश अपने में स्वयं ही बाह्य भाव का स्फुरण करती है।

वह परा संवित् ही माँ का स्वरूप है। अपनी आत्मा का शुद्ध स्वरूप जानने पर ही माँ को प्रायः जाना जाता है "ज्ञातस्वात्मस्वरूपो वै ततो ज्ञास्यसि मातरम्।" आत्मस्वरूप दृश्य भी नहीं है और वाच्य भी नहीं है, इसलिए इसके सम्बन्ध में साक्षात् उपदेश भी नहीं हो सकता। फिर भी यह कहना बनता है कि विषयाकारहीन बुद्धि में करणव्यापार की अपेक्षा किये बिना ही स्वरूपज्ञान उत्पन्न होता है। कारण, यह स्वरूप देवताओं से लेकर तिर्यक् पर्यन्त सभी प्राणियों के आत्मरूप से भासमान होता है। फिर भी वह हम लोगों के निकट स्पष्ट रूप से जो प्रतिभात नहीं होता उसका कारण यह है कि दृश्य आकार द्वारा इम लोगों की बुद्धि आच्छादित है। तथापि मेघाच्छन सूर्य के तुल्य किञ्चित् प्रकाश रहता ही है, क्योंकि उस प्रकाश के द्वारा ही सर्वदा सर्वत्र सबके निकट सब पदार्थ भासमान होते हैं। इसलिए आत्मा सर्वत्र ही भासमान होने पर में केवल शुद्ध बुद्धि में अभिव्यक्त होते हैं। करण के व्यापार कर्ता में प्रवृत्त नहीं होते, अतएव आत्मदर्शन में आचार्य अथवा गुरु का साक्षात् कोई उपयोग नहीं है। पराक्-दृष्टि शिष्य के निकट आत्मा अत्यन्त दूर है। गुरु केवल मात्र उसकी प्रत्यक् दृष्टि उत्पन्न कर देते हैं। तब साथ ही साथ आत्मा नित्य संनिहित हैं, यह समझ में आ सकता है।

यह परा संवित् अथवा आत्मा ही महाशक्ति 'माँ' हैं- ये सर्वदा विकल्पविहीन हैं। दर्पण जैसे सर्वदा ही दर्पण है. प्रतिबिम्ब चाहे भासे अथवा न भासे दर्पण जैस दर्पण ही रहता है- जैसे प्रपञ्च के संहारकाल में चैतन्य निर्विकल्प रहता है वैसे ही सृष्टि अथवा प्रपञ्च के प्रकाश काल में भी वह निर्विकल्प ही रहता है। सृष्टि और संहार में चैतन्य में कोई विकार नहीं आता। चैतन्य सदा चैतन्य ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भगवती जगदम्बा का परम रूप अखण्ड एकरस चैतन्य है, यह कहा जा चुका है। किन्तु उनका अपर रूप भी तो है। उनका परम रूप निराकार है, किन्तु अपर रूप साकार है। योगी लोग कहते हैं कि उनके अनन्त साकार रूप हैं। किन्तु उन सब रूपों के ऊपर एक प्रधान रूप है, जिसकी तुलना में अन्य सभी रूप अप्रधान रूप में परिगणित होते हैं। यह प्रधान रूप एक और अभिन्न है। यदि इसे सब अप्रधान रूपों के शिखर में स्थित कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यह अपर रूप एक होने पर भी किस प्रकार का है इसका भाषा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि रुचिभेद से, वासनाभेद से और दृष्टिभेद से वह शिखरस्थित एक ही रूप विभिन्न भक्तों के निकट तत् तत् रूपों से प्रतिभात होता है।

मैं यहाँ एक विशिष्ट धारा का अवलम्बन कर उसी प्रधान अपर रूप के धाम और स्वरूप का वर्णन करने की चेष्टा करूँगा। किस परम धाम में यह प्रधान अपर रूप विराजमान रहता है? उसके स्वरूप का यदि पता लगाना हो तो विश्वसंस्थान की एक धारणा रहना आवश्यक है। हम लोग जिसको ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसमें चौदह भुवन विद्यमान हैं। उनमें से सात ऊपर के भुवन और सात अधोभुवन हैं। पाताल, नरक आदि अधोभुवनों के अन्तर्गत हैं। भूलोक से सत्यलोक पर्यन्त ऊपरी भुवन कहे जा सकते हैं। अन्तरिक्ष और स्वर्गादि इन्हीं के अन्तर्गत हैं। प्रत्येक भुवन एक एक स्तर है। प्रत्येक स्तर का अवलम्बन कर अगणित लोक-लोकान्तर रहते हैं। इन सब को लेकर ही एक ब्रह्माण्ड है। इस प्रकार के अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। उनके सिवा ऊपर अन्यान्य विभाग भी है। उनमें शुद्ध और अन्तुह स्तरों का विन्यास भी दिखाई देता है। इस सब को मिलाकर समग्र विश्वराज्य है। इसके बाहर सृष्टि का कोई भी निदर्शन नहीं है, अनन्त व्यापी ज्योति-राशि विराजमान रहती है। इस ज्योति के ऊपर अपरिच्छिन चिदाकाश विद्यमान है। योगी लोग कहते हैं, चिदाकाश के मध्य में दिगन्त तक फैला हुआ एक महासमुद्र विराजमान है। उसका सुधा-सिन्धु अथवा अमृत समुद्र के

रूप में वर्णन किया जाता है। इस महासमुद्र के मध्य में केन्द्र स्थान में नवरत्न मणियों से रचित नौ-खण्डों का एक द्वीप है। उसे मणिद्वीप कहते हैं। इस द्वीप के मध्य में कदम्ब वन है। उसमें चिन्तामणि-गृह अथवा मन्दिर है। उस मन्दिर में पञ्च ब्रह्ममय मञ्च है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर ये मञ्च के चार पाद हैं। मञ्च के ऊपर फलक के रूप में सदाशिव हैं, यही मुख्य आसन है। इस आसन पर अनादि मिथुन परचैतन्यमय परमेश्वर और परमेश्वरी अभिन्न रूप में विराजमान हैं। ये साधक लोगों के निकट परम पुरुष और परमा प्रकृति के रूप में परिचित है।

यही विश्वजननी का प्रधान अपर रूप है (अवश्य एक दृष्टि से देखने पर) भगवती का अथवा भगवान् का जो परम स्वरूप है वह निराकार संवित्-मात्र है- सृष्टि के प्रारम्भ में वह निराकार संवित् ही नित्य युगलरूप में अपने को प्रकट करती है। में हम यहाँ मणिद्वीप की विशेष आलोचना नहीं करेंगे। किन्तु इस जगह जगदम्बा के अप्रधान अपर रूप के सम्बन्ध में दो एक बातें कहना आवश्यक प्रतीत होता है। सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा ये अधिकारी पुरुष हैं। माँ के अनुग्रह आदि पञ्चकृत्यों का सम्पादन ये ही करते रहते हैं। ये सभी माँ के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं, यह कहना व्यर्थ है। इनके अतिरिक्त गणेश, स्कन्द, दिक्पाल, कुमारी, लक्ष्मी आदि शक्तियाँ एवं यक्ष, राक्षस, असुर, नाग, किंपुरुष आदि में पूज्यरूप सभी वस्तुतः माँ के ही रूप हैं। उनकी माया से मोहित होकर लोग उन्हें पहिचान नहीं पाते। उनके अतिरिक्त पूज्य अथवा फलदायक और कोई नहीं है। जो जिस भाव से उनकी भावना करता है वह उस भाव से फल प्राप्त करता है। वास्तव में वे विभिन्न रूपों में विभिन्न देशों में जीवों पर अनुग्रह करने के लिए विराजमान है। मूल में सब रूप उन्हीं के रूप है। शास्त्र के अनुसार वे काञ्ची में कामाक्षी के रूप से, केरल में कुमारी के रूप से, गुजरात में अम्बा के रूप से, मलय में भ्रामरी के रूप से, करवीर में महालक्ष्मी के रूप से, मालव में कालिका के रूप से, प्रयाग में ललिता के रूप से, विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी के रूप से. वाराणसी में विशालाक्षी के रूप से विराजमान हैं। ये ही उनके बारह रूप हैं। इनके अतिरिक्त उनक और भी असंख्य रूप शास्त्र से जाने जा सकता हैं।

***

दुर्गा-सप्तशती में शक्ति का दार्शनिक स्वरूप का शेष पृ. स. 38 से

भगवती की स्तुति वाणी से संभव नहीं है। फिर यह प्रश्न मन में हो सकता है कि इतना विशाल वाङ्मय का क्या होगा। शब्द उस परम तत्त्व का संकेतमात्र करता है। जिस प्रकार नाव कभी भी जल से बाहर नहीं जा सकता है फिर भी वह तट पर पहुँचा देता है। उसी प्रकार शब्द की भी महिमा है। भागवत महापुराण में भी गजेन्द्र ने इसका संकेत किया है। मनुष्य में सामर्थ्य नहीं है कि भगवती की स्तुति कर ले- **जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।**

शिवमहिम्नस्तोत्र में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है- **स कस्य स्तोतव्यः।**

अद्वैतवेदान्त में अवाङ्मनसगोचर की बात कही गयी है।

इस प्रकार दुर्गासप्तशती मोक्षप्रदायिका, काव्यात्मक चारुता से एवं दार्शनिक सिद्धान्तों से परिपूर्ण है। चतुर्थ अध्याय एवं एकादश अध्याय में भगवती की उदात्त महिमा अपूर्व वर्णन मिलता है।

***

('धर्मायण' अंक संख्या 30, जुलाई-सितम्बर, 1995 ई. में पूर्व-प्रकाशित)

शक्तिपूजा : मातृशक्ति का भावात्मक आधार

ललित निबन्ध

कुमारी संगीता

हर प्रकार के साधनों से सम्पन्न होकर भी युद्धभूमि में रावण क्यों मारा गया, वह अपने परिवार के साथ क्यों विनष्ट हुआ? उसके पास सेना थी, देवताओं से छीने गये सारे ऐश्वर्य थे, यहाँ तक कि देवादिदेव महादेव का दिया हुआ वरदान भी था, फिर भी साधन-हीन, वानर-भालुओं की सेना लेकर तपस्वी वेष में रहनेवाले श्रीराम से वह हार गया!

इसी प्रश्न का उत्तर देता हुआ यह आलेख कहता है कि रावण के मन में मातृशक्ति के प्रति वासनात्मक बुद्धि थी- हथियाने की बुद्धि थी, वह गृहस्थ होता हुआ भी संन्यासी के छद्मवेष में सीता का अपहरण कर चुका था।

1995 ई. में धर्मायण में प्रकाशित यह आलेख मुख्य रूप से निराला रचित राम की शक्तिपूजा काव्य पर आधारित एक ललित-निबन्ध है। इसकी भाषा का प्रवाह देखकर प्रस्तुत विशेषांक में पुनः प्रकाशित किया गया है।

मातृ-सत्ता को भाव का ऊँचा आसन दिया गया है। उम्र की सीमा आड़े न आ सकी। पुरुषों के कई वर्ग रहे। एक वर्ग वह भी था जिसके पास अपार शक्ति थी। सत्ता का असीम भोग भोगना चाहता था वह। उसके अस्तित्व को लोग मानें और वह मनमाने ढंग से अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता रहे। लोकाचार और वेदाचार का कोई अनुशासन न लागू किया जाए उसपर। उसका उन्मुक्त आचरण ही लोकाचार और वेदाचार का प्रमाण मान लिया जाए।

इच्छाओं का कोई अंत नहीं। अनन्त इच्छाएँ उठती रहती हैं मनुष्य के मन में। इच्छाओं को विवेक के रास्ते ले चलनेवाले लोग ही ज्ञानी कहे जाते हैं। जो अपनी इच्छाओं के वेग में स्वयं को बहा देते हैं, वही अज्ञानी हैं। चाहे वे कितने ही साधन क्यों न एकत्र कर लिए हों। शास्त्रों की गुत्थियाँ सुलझाने और अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाने के लिए चाहे वे कितने ही यज्ञ क्यों न किए हों, उनकी तपस्या तो भोग की व्यापक सुविधाएँ जुटाने का माध्यम भर ही बनी रहती है। भारतीय साहित्य में उसके अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं।

राम और रावण का चरित्र सामने है। सीता के जीवन-दर्शन पर सती अनसूया का अकूत प्रभाव दिखलायी देता है। वह पर-पुरुष तक अपनी दृष्टि दौड़ाना भी नहीं जानतीं। जाने अनजाने रावण का कुत्सित व्यवहार उनकी विवशता और उनकी अकिंचन प्रकृति का कुछ अधिक मुखर अभिव्यक्ति बन जाता है।

रावण के पास साधन की कमी नहीं थी। न तो उसके अन्तःपुर में सीता से कम खूबसूरत स्त्रियों की कमी थी और न भोग की उपयुक्त सामग्री का अभाव। वय की सीमा और परिवार की मर्यादा की बात तो दूर उसे यह भी नहीं पता कि सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कितने ही मासूमों को असमय ही मौत के द्वार पर क्यों खड़ा किया जा रहा है? अक्षकुमार, मेघनाद-जैसे कोमल और पौरुषदीप्त पुत्रों को गँवाने का क्या

गौतम बुद्ध कुटीर पड़ाव पोखर पथ-1, आमगोला मुजफ्फरपुर-2 (1995ई. में प्रकाशित तत्कालीन पता)

"गहराई में जाने पर स्पष्ट होता है कि युद्ध साधन से नहीं, मनःशक्ति से किया जाता है। रावण जीवन भर भौतिक साधन ही एकत्र करता रहा। उसकी तपस्या, उसकी साधना उसके स्वाध्याय और उसके लोकज्ञान का एकमात्र लक्ष्य रहा भौतिक सुख और ऐश्वर्य की भौतिक प्राप्ति। उसकी इच्छाएँ उत्तरोत्तर एकांगी बनती चली गयीं। उसे इस बात का कभी ध्यान ही नहीं रहा कि क्या इन साधनों से कभी आत्मिक शांति और नैतिक शक्ति को पुष्टि भी मिलने वाली है या नहीं? "

परिणाम होगा? बस यही कि सब कुछ जानने का दावा करने के बावजूद उसे यह नहीं पता कि वह क्या करने जा रहा है?

राम-रावण युद्ध का वर्णन वाल्मीकि ने किया है, तुलसीदास ने और निराला ने भी। वाल्मीकि और निराला ने स्पष्ट संकेत किया है कि रावण के व्यक्तित्व और भौतिक साधन के सामने राम काफी बौने नजर आते हैं। एक तरफ साधन का अम्बार, दूसरी ओर साधनहीनता की खाई। एक इन्द्र और कुबेर की अपार सम्पत्ति पर कब्जा करनेवाला तो दूसरा परित्यक्त, निर्वासित जीवन जीने वाला, जंगल-जंगल की खाक छानने वाला। एक राजप्रसाद के ऐश्वर्य और सुख का असीमित भोग भोगनेवाला तो दूसरा कन्द-मूल पर बसर करनेवाला। एक के पास अपार अस्त्र-शस्त्रों का अम्बार तो दूसरे के पास उसका नितान्त अभाव। एक के पास अपार सेना, शक्ति और साधन से युक्त रथ, घोड़े, हाथियों और यानों की कमी नहीं तो दूसरा अर्द्धनग्न। रीछ और वानर-जैसे जन-जातियों की साधनहीनता से घिरा हुआ! कैसी विचित्रता! फिर भी सामाजिक मर्यादा और पारिवारिक शील को पुनर्जीवन देना ही है- राम ऐसा सोचकर ही रावण पर आक्रमण करते हैं। इतिहास की कैसी विसंगति है? इन्द्र, कुबेर, यमराज और ब्रह्मा आदि साधन सम्पन्न, ऐश्वर्यवान्, दैवी-शक्ति सम्पन्न, शक्तिमान् पुरुषों पर आक्रमण करनेवाले रावण पर एक अभावग्रस्त, साधनहीन, वन्यजीवन जीनेवाला व्यक्ति उसकी राजधानी पर चढ़कर युद्ध ठानता है। .

गहराई में जाने पर स्पष्ट होता है कि युद्ध साधन से नहीं, मनःशक्ति से किया जाता है। रावण जीवन भर भौतिक साधन ही एकत्र करता रहा। उसकी तपस्या, उसकी साधना उसके स्वाध्याय और उसके लोकज्ञान का एकमात्र लक्ष्य रहा भौतिक सुख और ऐश्वर्य की भौतिक प्राप्ति। उसकी इच्छाएँ उत्तरोत्तर एकांगी बनती चली गयीं। उसे इस बात का कभी ध्यान ही नहीं रहा कि क्या इन साधनों से कभी आत्मिक शांति और नैतिक शक्ति को पुष्टि भी मिलने वाली है या नहीं? वह बहता गया, बहता ही रहा अपनी इच्छाओं के विकल प्रवाह में। राम की इच्छाएँ उनके विवेक के अनुशासन में पगी थीं। वे कोई कार्य करने के पूर्व उसके परिणाम पर अधिक सोचते थे। उनमें निःसंगता थी विरक्ति नहीं, तत्परता थी, अधैर्य नहीं, जागरूकता थी, उतावलापन नहीं, कर्मण्यता थी, उपभोगवादिता नहीं, सदाचारिता थी, दुराचारिता नहीं। उनका जीवन स्वच्छ, पारदर्शी, निष्कलुष और संवेदनशील था। वे दूसरे की पीड़ा में अपनी पीड़ा का अनुभव लेते थे। इतने सतर्क और जागरूक कि यदि अगस्त्य, अत्रि-जैसे ऋषि की आत्म-विद्या से अपना ऐहिक ज्ञान परिष्कृत करते हैं तो शबरी जटायु और गुह जैसे जनजातियों की लोक-विद्या से अपने को परिष्कृत करना भी जानते हैं।

रावण सिर्फ अपनी वासना और असंयमित भावना को ही अपनी सफलता का माध्यम बनाता है। राम सफल होने की अपेक्षा अपने को अधिक से अधिक योग्य बनाने के लिए निरन्तर अपने को जागरूक रखते हैं। रावण मान लेता है कि वह इन्द्र, कुबेर और यक्षों को परास्त कर सब कुछ प्राप्त कर चुका है। वह शिव को रिझाकर, ब्रह्मा को धोखा देकर सब कुछ पा चुका है, अब उसके पास किसी चीज की कमी नहीं रह गयी है। सिर्फ यदि कमी है तो संयम की, धैर्य की, संतुलन

की आत्मज्ञान की। उस कमी की पूर्ति के लिए वह अपने महलों को बेशुमार युवतियों से भर देता है। एक पल यह भी नहीं सोचता कि उसके लाडले अक्षकुमार और परम यशस्वी मेघनाद के सौन्दर्य पर भी तो वे युवतियाँ रीझ सकती हैं? मिश्रकेशी रावण के काले स्वरूप का चित्र वाल्मीकि ने खींचा है- कितना विरूप है और ढलती उम्र के कारण उसके भौतिक प्रकाश' में कितना अँधेरा समाविष्ट होता जा रहा है, शायद यह भी नहीं अनुभव कर पाता।

राम-रावण युद्ध में राम और रावण के मनोविज्ञान पर सोचना होगा। रावण के मस्तिष्क में सीता की सौन्दर्यमयी छवि नाच रही थी। एक पल भी वह अपने को उस छवि के आकर्षण से मुक्त नहीं कर पा रहा था।

वाल्मीकि के शब्दों में- **त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम्** ।' उस छवि पर उसकी वासना के कुहरे छाये हुए थे। संभव है राम को राम के रूप में देख पाता होगा या नहीं? यह भी संभव है कि उसके कठोर और दुर्धर्ष व्यक्तित्व पर उसकी वासना की तीव्रता का कुंठित वेग आच्छन्न हो गया हो और उसकी भावना उत्तरोत्तर कोमल बनती चली गयी हो?

निराला लिखते हैं कि राम की स्मृति में जनकपुर का चित्र उमड़ जाता है, लतांतराल मिलन के साथ उनके हाथ ऊपर उठ जाते हैं- धनुष तोड़नेवाली मानसिकता में। पौरुष का वेग उद्दाम होकर बहने लगता है।

सिहरा तन, क्षण भर भूला, लहरा समस्त,

"वस्तुतः राम और रावण का युद्ध मनोग्रन्थियों का युद्ध ही था। एक में फैलाव था, आत्मवान् बनने की लालसा थी, एक को दूसरे से मिलाने और दूसरे को तीसरे से मिलाकर एक नयी संस्कृति, नया विश्वास, नये परिवेश और नयी शक्ति प्राप्त करने की कटिबद्धता थी। जबकि दूसरा अपने भोग के लिए अपने भाई, बेटे-पोते और नाती तक को भीतर से काट रहा था। वह अकेला बनकर सारा सुख और भोग अपने आप में समेट लेना चाहता था।"

हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर।

रावण चोर बनकर गया था सीता को हथियाने, साधु वेश में। साधु वेश की विमल संस्कृति है। शायद निश्छलता पवित्रता और सात्त्विकता का अंतिम प्रमाण। लेकिन साधुवेश में चोर छिपा है। रावण की साधुता और उसकी तपस्या में वह चोर सदैव विद्यमान था। वह चुपके से कैलास उठाकर लंका ले जाने की शराफत पहले ही कर चुका था, यद्यपि उसे मुहँ की खानी पड़ी थी। राम-रावण युद्ध का तात्पर्य? मनोभावों के साथ गहरा सम्बन्ध था, उस युद्ध का।

वस्तुतः राम और रावण का युद्ध मनोग्रन्थियों का युद्ध ही था। एक में फैलाव था, आत्मवान् बनने की लालसा थी, एक को दूसरे से मिलाने और दूसरे को तीसरे से मिलाकर एक नयी संस्कृति, नया विश्वास, नये परिवेश और नयी शक्ति प्राप्त करने की कटिबद्धता थी। जबकि दूसरा अपने भोग के लिए अपने भाई, बेटे-पोते और नाती तक को भीतर से काट रहा था। वह अकेला बनकर सारा सुख और भोग अपने आप में समेट लेना चाहता था।

शायद इसीलिए वैयक्तिक सुख का खात्मा हो गया। समष्टि आगे हो गयी। शौर्य, धैर्य, शुचिता, त्याग, विवेक, और वैश्विक मन को एक सुधर आकृति मिली। सीता-प्रसंग के अतिरिक्त चाहे महिषासुर-प्रसंग हो अथवा मधु-कैटभ का, सर्वत्र

साधन और भौतिक शक्ति की हार इसलिए हुई कि वे लोग वासना की तीव्रता में इतने प्रवहमान हो चले थे कि वास्तविक ऊर्जा का उन्हें कोई बोध ही नहीं रह गया था। भगवती दुर्गा के सौन्दर्य और उनकी दीप्ति का जो चित्र मार्कण्डेयजी ने खींचा है वह कितना सूक्ष्म और मनोग्राही है।

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकाम्
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।

दुर्गा का रूप सौन्दर्य, उनकी शृंगारिक भंगिमाएँ और चातुर्य भी तो महिषासुर के लिए अधिक घातक सिद्ध हुआ। युद्ध में निश्चय ही वह यह नहीं चाहता रहा होगा कि दुर्गा की हत्या वह स्वयं कर डाले, क्योंकि उसके मन में दुर्गा को चाहने की वृत्ति थी, पाने की इच्छा थी खोने की नहीं। यही कारण है कि भाव की इस कुत्सित मनोग्रंथि ने उसे समय की रेत पर मृत बनाकर फेंक दिया।

कहना यही है कि मनोग्रन्थियों को हम जिस प्रकार की आकृति दे पाते हैं, वही आकृति हमारे जीवन के लिए अधिक मूल्यवान होगी और अधिक कारगर भी। जंगल में सीता की खोज में दर-दर भटकने वाले राम सीता के वेश में आनेवाली सती को पहचानने में एक पल की भूल नहीं करते। मातृ-सत्ता की पहचान थी। लेकिन, रावण सीता का अपहरण करके यह एक पल भी नहीं सोच सका कि सीता कुछ ऐसी-वैसी नारी नहीं है। उसने सफाई करने के लिए बाएँ हाथ से ही शिव का वह धनुष उठा लिया था, जिस को रावण स्पर्श करने तक का साहस नहीं जुटा सका। अपनी शक्ति और सीमा की सही पहचान तभी होगी, जब हम अपनी मनोग्रंथियों को भाव के ऊँचे संस्कार से दीप्त करें और मातृ-सत्ता की सही पहचान करें।

***

धर्मायण

शीर्षक कोड- BIHHIN00719

पंजीयन संख्या- 52257/90

भाषा- हिन्दी

आवर्तिता- मासिक

राज्य- बिहार

प्रकाशन जिला- पटना

मूल्य- 20 रुपये

प्रकाशक का नाम- श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए श्री नागेन्द्र ओझा

प्रकाशक का पता- महावीर मन्दिर, पटना रेलवे जंक्शन के सामने पटना- 800001, बिहार

मुद्रक का नाम- राजेश कुमार

मुद्रक का पता- प्रकाश इंटरप्राइजेज, भरहरा कोठी, नयाटोला, पटना- 800004

सम्पादक का नाम- भवनाथ झा

सम्पादक का पता- ग्राम पो. हटाढ़ रुपौली झंझारपुर, मधुबनी, 847404

मुद्रण प्रेस का नाम- प्रकाश इंटरप्राइजेज

मुद्रण प्रेस का पता- नयाटोला, भरहरा कोठी, नयाटोला, पटना- 800004

स्वामित्व- श्री महावीर स्थान न्यास समिति

प्रकाशन का स्थान- महावीर मन्दिर, पटना रेलवे जंक्शन के सामने पटना- 800001, बिहार

प्रकाशक का ई-मेल- mahavirmandir@gmail.com

प्रकाशक का मोबाइल न.- 9334468400

स्वामी का ईमेल- mahavirmandir@gmail.com

स्वामी का मोबाइल नं.- 9334468400

स्वामी का दूरभाष- 612-2223789

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अभिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

ह. श्री नागेन्द्र ओझा

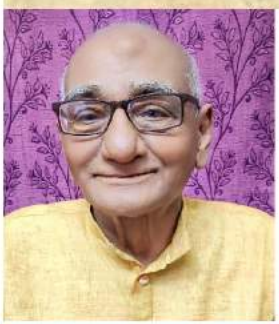

('धर्मायण' अंक संख्या 67, जुलाई-सितम्बर, 1995 ई. में पूर्व-प्रकाशित)

भारतीय साहित्य में शक्ति की अभिव्यंजना

डा0 भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता*

बिहार के सुपौल जिला के मूल निवासी डा. भुवनेश्वर प्रसाद गुरमैता जी (जन्म– 14-01-1930 ई.) हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय में भाषा एवं संस्कृति के विभाग के प्रोफेसर रहे। वर्तमान में वे 90 वर्ष की भी अवस्था में दिल्ली में अपने पौत्रों के साथ पूर्ण स्वस्थ रह रहे हैं। वे अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, एवं सम्प्रति, केन्द्रीय कार्यकारिणी एवं न्यास सदस्य हैं।

धर्मायण पत्रिका में उनके अनेक आलेख प्रकाशित हुए थे, उनमें से एक आलेख हम प्रस्तुत विशेषांक में पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। संकटमोचन हनुमान जी से प्रार्थना है कि श्रद्धेय गुरुमैताजी दीर्घायु हों तथा स्वस्थ रहते हुए लेखन में उद्यत रहें।

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति में शक्ति की आराधना लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का हेतु समझी गई है। गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर राष्ट्रकी रक्षा के लिए जब आर्य छात्र निकलता था, तब उसकी धारणा थी- मेरे आगे चारों वेद हैं और पीठ पर धनुष-बाण भी। मैं ब्रह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति दोनों से शत्रुओं को परास्त कर सकता हूँ, क्योंकि मैं दोनों में प्रवीण हूँ

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

वस्तुतः प्राचीन भारत ने इस तथ्य को भली-भाँति समझा था कि ब्राह्मतेज के सहयोग से ही क्षात्रतेज जगत् का कल्याण कर सकता है। राष्ट्रकी अस्मिता की रक्षा के निमित्त आध्यात्मिक और शारीरिक (भौतिक) दोनों प्रकार की शक्तियों के वर्धन की नितान्त आवश्यकता है। ब्राह्मशक्ति और क्षात्रशक्ति में सामंजस्य स्थापित करके ही राष्ट्रकी सर्वांगीण उन्नति सम्भव है। इस प्रकार, हमें सत्य, बल, बुद्धि और धन- सभी शक्तियों की उपासना करनी चाहिए। परन्तु यह निश्चित है कि परम वैभवशाली राष्ट्रकी रक्षा भी शक्ति के बिना असम्भव है शस्त्रेण रक्षिते देशे शास्त्रचर्या प्रवर्तते।

अर्थात् शस्त्रों से रक्षित देश में ही शास्त्रों की चर्चा हो सकती है।

प्राचीन भारतीय मनीषा ने राष्ट्रकी रक्षा के लिए शक्ति की अनिवार्यता को अपरिहार्य समझा था। मनु महाराज के कथनानुसार राष्ट्रके अपने अस्त्र-शस्त्र हर समय प्रस्तुत रहने चाहिए

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
नित्यं संवृतसंवार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरः॥ (मनुस्मृति : 7.102)

नित्य सैन्यशिक्षा का अभ्यास करना चाहिए और सदा अपने पौरुष को

*पो0- मटियारी, जिला-सुपौल, **वर्तमान पता-** के-73, प्रथम तल, न्यू महावीर नगर, तिलक नगर, नई दिल्ली– 110018.

प्रकट करते रहना चाहिए। इसी प्रकार नित्य अपनी चेष्टा को संवृत रखना चाहिए तथा शत्रु के छिद्र (कमजोरी) पर नजर रखनी चाहिए।

मनुस्मृति के साक्ष्य से ही जो राष्ट्रशस्त्रबल से सुदृढ़ रहता है, शस्त्रशक्ति से सन्नद्ध रहता है, उससे समस्त संसार काँपता है

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत्।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ (मनुस्मृति : 7.103)

अर्थात् जो राष्ट्रदण्ड (बल) के प्रति नित्य उद्यत रहता है, उससे सारा जगत् उद्वेलित रहता है। इसलिए सभी को दण्डशक्ति से ही वश में करना चाहिए।

संसार शक्ति की भाषा समझता है। विजयश्री शक्तिशाली का ही वरण करती है। शक्ति की उपासना परमेश्वर का वरदान है। परम पिता परमात्मा सत्य हैं, अनादि हैं, अनन्त हैं, न्यायकारी हैं, शक्तिशाली हैं। सर्वशक्ति-संपन्नता उनका गुणधर्म है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने बाहु ऊर्ध्व करके ललकारकर कहा- "यदि हम उनकी कृपादृष्टि चाहते हैं तो सबसे पहले आगे बढ़कर शक्ति की उपासना करें। शक्तिशाली बनें।"

उपनिषदों के अनुसार, दुर्बल व्यक्ति को परमात्मा का भक्त कहलाने का कोई अधिकार नहीं है- "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" वे ही राष्ट्रऔर समाज इतिहास के पन्नों में अमर हैं, जिन्होंने शक्ति की आराधना की। इसीलिए नीतिकारों का उपदेश है- "वीरभोग्या वसुन्धरा" अर्थात् शक्तिशाली ही धरती पर शासन करते हैं। विजय, शक्ति और पराक्रम की प्राप्ति वैदिक वाङ्मय का उपदेश है। उन महर्षियों की कामना थी कि विश्वगगन में हमारे राष्ट्रध्वज शान से फहराते रहें। हमारे नागरिक बलशाली हों। हमारे अमोघ बाण विजय प्राप्त करते रहें। देवगण विजय दिलाते रहें

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु अस्माकंया इषवः ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त अस्मां इ देवा अवताहवेषु॥ (ऋग्वेद : 10.103.11)

एक अन्य मन्त्र में ऋषि की मनोवांछा है कि 'जो हमसे द्वेष करता है, जो सेना भेजकर आक्रमण करता है, जो हमारा वध करना चाहता है अथवा जो हमें परतन्त्र करना चाहता है, अपनी शक्ति से उसका विनाश कर दें

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यादः।
यो अभिदासान्मनसायो वधेन। तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥

"संसार शक्ति की भाषा समझता है। विजयश्री शक्तिशाली का ही वरण करती है। शक्ति की उपासना परमेश्वर का वरदान है। परम पिता परमात्मा सत्य हैं, अनादि हैं, अनन्त हैं, न्यायकारी हैं, शक्तिशाली हैं। सर्वशक्ति-संपन्नता उनका गुणधर्म है। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने बाहु ऊर्ध्व करके ललकारकर कहा- "यदि हम उनकी कृपादृष्टि चाहते हैं तो सबसे पहले आगे बढ़कर शक्ति की उपासना करें। शक्तिशाली बनें।"

मार्कण्डेय-पुराण के अन्तर्गत दुर्गा-सप्तशती में ऋषि ने वरदायिनी शत्रुनाशिनी शक्ति की अधिष्ठात्री देवी माँ दुर्गा से प्रार्थना की है कि हे माता! आपने शत्रुओं का नाश कर लोकों की रक्षा की है। उन शत्रुओं को युद्धभूमि में परास्त किया है। उन्मत्त दैत्यों से होनेवाले भय को दूर किया है। आपको हमारा नमस्कार है। देवि! शूल और खड्ग से हमारी रक्षा करें। घण्टा और धनुष की टंकार से हमलोगों की रक्षा करें। चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में हमारी रक्षा करें। त्रिशूल घुमाकर उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा करें। तीनों लोकों में आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी भूलोक की रक्षा करें। करपल्लवों में शोभित खड्ग, शूल और गदा आदि अस्त्रों से हमारी रक्षा करें

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामेणात्मशूलस्य उतरस्यां तथेश्वरि॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्तिते।
यानि चात्यर्थघोराणि तैरक्षास्मांस्तथा भुवम्॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥ (दुर्गा-सप्तशती : 4.24-27)

शक्ति से अनुप्राणित होकर ही सुग्रीव ने ऐसा ठान लिया

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥ (मानस : 4.13)

राम ने जब बिना परिश्रम किए ही ताड़ के पेड़ों को एक ही बाण से बींध गिराए तथा राक्षस की हड्डियों के ढेर को पैर के अंगूठे से ढाह दिया, तब उनकी अपार शक्ति पर विश्वास कर सुग्रीव के हृदय में और भी प्रीति बढ़ गई। प्रभु की शक्ति को पहचानकर सुग्रीव ने उनके चरणों में सिर नवाया।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम शक्ति के अनन्य उपासक थे। अपनी इस शक्ति के आधार पर एक ओर उन्होंने जहाँ सत्यान्वेषी ऋषि-मुनियों को निर्भयता प्रदान की, वहींदूसरी ओर आसुरी प्रवृत्तियों के समूलोच्छेद के लिए कृतसंकल्प होकर दुष्टों का दलन करने लगे। शक्ति पर अटूट विश्वास रखनेवाले राम जब सीता की प्राप्ति हेतु लंका की ओर ससैन्य अग्रसर होते हैं, पर हिन्द महासागर की उत्ताल तरंगें मार्ग रोककर खड़ी हो जाती हैं, उस समय के उनके पुरुषार्थ और शक्ति का उत्कर्ष प्रदर्शित करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ओजस्वी स्वर में कहते हैं

तीन दिवस तक पन्थ माँगते रघुपति सिन्धु किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द अनुनय के प्यारे-प्यारे।
उत्तर में जब एक नाद भी उठा नहीं सागर से,
उठी धधक तेज पौरुष की आग राम के शर से॥

और तब शक्ति की प्रचण्ड अग्नि समुद्र को तप्त कर विजय का रास्ता बना देती है। इस घटना का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए पुनः दिनकरजी घोषणा करते हैं सच पूछो तो शर में ही बसती है दीप्ति विनय की। सन्धि-वचन-सम्पूज्य उसी का जिसमें शक्ति विजय की॥

बाद में राम-रावण का युद्ध होता है। राम के पक्ष में सत्य था, न्याय था, चरित्र था, पर इन सबके होते हुए भी यदि उनकी दुर्दमनीय शक्ति रावण-जैसे दुष्ट का वध कर उसकी सारी सेना को कुचल देने में समर्थ न होती तो राम का यश कदाचित् संसार के सामने न आता। पुनः दिनकरजी कहते हैं

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।
उसको क्या? जो दन्तहीन विषहीन विनीत सरल हो॥

देवी-दैत्य संग्राम से सम्बद्ध ये पंक्तियाँ कितनी अनुप्राणित करती हैं क्षणभर को हो गये शत्रु सब किंकर्तव्य विमूढ़, समझे कौन महामाया की माया गर्भित गूढ? काम रूप घन पर बिजली-सी साहस सिंहारूढ़, टूट पड़ी दैत्यों पर दुर्गा अपने बल से व्यूढ़। झुलस गई असुरों की आँखें उनको निकट निहार,

आँख मूंदकर तब ये मानों करने लगे प्रहार। शक्ति एक थी, गण अगणित थे, झुके झुण्ड के झुण्ड, उधर असुरगण भी असंख्य थे भीषण विकृत वितुण्ड। हुंकारित होते थे मानो कटकर भी अरिमुण्ड, अपनों को भी मार रहे थे अन्धे होकर रुण्ड। प्रकृत विकृत रिपु द्विगुण विकृत थे होकर रण में क्रुद्ध, हँस-हँस लीलामयी सकौतुक करने लगी सुयुद्ध॥

पुनः शक्ति सांधातिक दुर्गा की उत्पत्ति से एकता को पुष्ट-करती ये पंक्तियाँ कितनी समीचीन हैं

संघ-शक्ति ही कलि दैत्यों का मेटेगी आतंक,
इतना कहते-कहते हरि की हुई भृकुटि कुछ वंक।
कृपा है कि यह कोप? काल यों जब तक हुआ सशंक,
निकला तब तक उनके तनु से तेज एक अकलंक।
ब्रह्म, रुद्र, इन्द्रादि सुरों के तनु से भी तत्काल
निकले ज्योतिपुंज और सब मिले उसी में हाल॥

समग्र भारतीय साहित्य शक्ति की महिमा से गुंजित है। वस्तुतः साहित्य समाज के हित के निमित्त है। समाज की सुख-शान्ति के लिए उसे निर्भय होना नितान्त आवश्यक है और निर्भयता की जननी है शक्ति। शत्रु पर विजय प्राप्त करने का उपाय है शक्ति। अशान्ति, अराजकता और अन्याय को दमन करने का साधन है शक्ति। आदिशक्ति की प्रार्थना करना और उनके चरणों में मन की दुर्बलता तथा मलिनता को अर्पित कर देने से मनुष्य शक्ति प्राप्त कर सकता है। भारतीय साहित्य इसी हेतु शक्ति का स्तवन करता है।

***

अद्भुत रामायण की

रामकथा

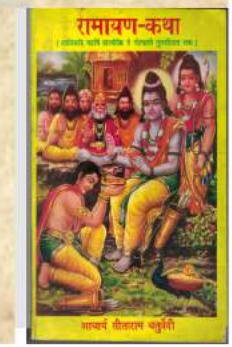

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

- प्रधान सम्पादक

अद्भुत रामायण की रचना सीता के माहात्म्य की दृष्टि से की गयी है। इसमें सीता को महेश्वर शिव की शक्ति काली के रूप में प्रतिपादित किया गया है। सहस्रबाहु रावण के वध के समय सीता का काली के रूप में प्रकट होकर विशाल रूप धारण करना इस रामायण का केन्द्रीय तत्त्व है।

[अद्भुत रामायणके रचनाकार भी महर्षि वाल्मीकि ही बताए गए है किन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं है।]

एक बार तमसाके तीरपर वाल्मीकिसे उनके शिष्य भरद्वाजने पूछा कि सौ करोड़ रामायणोंमें गुप्त क्या है ? वाल्मीकि ने कहा कि जो पच्चीस सहस्र रामायण मृत्युलोक में हैं उनमें सीताका माहात्म्य कहीं नहीं है । वह केवल ब्रह्माके पास है जो मैं तुम्हें सुनाए देता हूँ। सीता ही परम शक्ति है। उनमें और राममें कोई भेद नहीं है।

अम्बरीषको वर-प्रदान

त्रिशंकुकी पत्नी पद्मावती नित्य नारायणका पूजन और 'नमो नारायणाय' मन्त्रका जप किया करती थी। एक बार द्वादशी व्रतके पश्चात् भगवान् ने प्रकट होकर पूछा- तुम क्या चाहती हो? उसने कहा- 'मुझे भगवद्भक्त पुत्र चाहिए।' भगवान् ने उसे एक फल दिया जिसे वह अपने स्वामीको निवेदन करके खा गई। उससे उसे अम्बरीष नामका भगवद्-भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताकी मृत्युके पश्चात् वह भी तप करने और 'नमो नारायणाय' मन्त्र जपने लगा। भगवान् तब इन्द्र के रूपमें आकर बोले- 'वर मांगो।' अम्बरीषने कहा- मुझे जो मांगना होगा मैं नारायणसे ही मांगूंगा। तत्काल भगवान् के प्रकट होनेपर अम्बरीषने कहा- 'आपमें मेरी अचल भक्ति हो।' भगवान् ने उन्हें सुदर्शन चक्र देते हुए कहा- लो, यह चक्र सदा तुम्हारी रक्षा किया करता रहेगा।

राम-जन्मका उपक्रम

श्रीमती नामक उनकी कन्या जब विवाह-योग्य होनेपर भी विवाह के लिये प्रस्तुत नहीं हुई तब भगवान् ने प्रकट होकर कहा-विवाह ही कन्याका एक मात्र संस्कार है। जो कन्या विवाह नहीं करती वह अपने इक्कीस पीढ़ी पूर्वजोंको नरक में डालती है और स्वयं भी भगवान् की भक्ति नहीं प्राप्त कर पाती। श्रीमतीने निवेदन किया- नित्य आपकी उपासना करनेपर भी क्या मुझे यह दोष लगेगा? भगवान् ने कहा- मेरे नियम-भंग करनेवालेको तो दोष लगेगा ही। यह कहकर वे अन्तर्धान हो गए।

उसी समय नारद और पर्वत ऋषिने अलग-अलग आकर एकान्तमें अम्बरीषसे कहा कि यह कन्या मुझे दे दीजिए। अम्बरीषने कहा- यह कन्या जिसे स्वयं वरण करेगी उसीको दूंगा। नारदने विष्णु के पास पहुंचकर कहा कि मैं अम्बरीषकी कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ, इसलिये आप पर्वत ऋषिका मुख वानरके समान कर दीजिए। भगवान् ने कहा- 'ठीक है।' इतनेमें पर्वतने भी उनसे आकर कहा कि नारदका मुख लंगूर-जैसा कर दीजिए। भगवान् ने उन्हें भी 'ठीक है' कह दिया। जब दोनों स्वयंवरमें पहुंचे तब कन्याने उन्हें देखकर तो मुंह फेर लिया पर उन दोनोंके बीचमें जो सुन्दर युवक धनुष-बाण लिए आ खड़ा हुआ था उसके गले में जयमाल डालकर वह उसके साथ चल दी। दोनों ताड़ गए कि हो न हो यह भगवान् की ही करतूत होगी। जब दोनों उनके पास गए तो वे कहने लगे कि आप दोनोंने जैसा-जैसा कहा था वैसा-वैसा मैंने कर दिया। तब उन्होंने अम्बरीषको शाप दिया कि तैने हमें बुलाकर दूसरेको कन्या दे दी इसलिये तू अज्ञानी हो जा। तत्काल सुदर्शन चक्रने प्रकट होकर अम्बरीषके अज्ञानका अन्धकार तो दूर कर ही दिया, साथ ही वह उन दोनोंके पीछे भी दौड़ चला। अब तो वे दौड़े विष्णुके पास गए और उन्होंने विष्णुको शाप दिया कि जिस धनुषधारी मूर्तिसे आपने श्रीमतीका हरण किया है उसी मूर्तिसे आप अम्बरीषके कुलमें दशरथके यहाँ जन्म लेंगे और यह श्रीमती ही पृथ्वीकी पुत्री होगी, जिसका पालन विदेह करेगा, कोई नीच राक्षस इसका हरण करेगा और जैसे हमें इसके वियोगमें दुःख हुआ है वैसे ही तुम भी रोते फिरोगे। भगवान् ने कहा- 'आप लोगोंका शाप सिर माथे। मैं दशरथके यहाँ जाकर जन्म लूँगा जहाँ मेरी दक्षिण भुजा भरत होंगे, बाईं शत्रुघ्न होंगे और शेष लक्ष्मण होंगे।' यह सुनते ही उन दोनोंका अज्ञान दूर हो मिटा और दोनोंने प्रतिज्ञा की कि अब हम जन्मभर विवाहके फेरमें नहीं पड़ेंगे।

[रामके जन्मका यह नया कारण इसी रामायणमें है। नारद-मोहकी कथा तुलसीदासजीने यहींसे ली है।]

सीताके जन्मकी कथा

सीताके जन्मका कारण भरद्वाजको वाल्मीकिने बताया कि त्रेतायुगमें भगवान् का चरित्र गानेवाले एक कौशिक नामके ब्राह्मणको पद्माक्ष नामक दूसरा ब्राह्मण सदा अन्न आदि भी देता रहता था और उनका शिष्य भी हो गया था। वहीं मालव और उसकी पत्नी मालती भी नारायणके मन्दिरमें आकर सेवा किया करती और भजन सुना करती थी। फिर तो पचासों ब्राह्मण वहाँ भजन सुनने और गाने आने लगे। कलिंगके राजाने कौशिकको कहलाया कि तुम केवल हमारी ही कीर्तिका गान किया करो जिसे सब ब्राह्मण बैठकर सुना करें। जब कौशिक तथा ब्राह्मणोंने यह आज्ञा नहीं मानी तब उस राजाने सबको देशसे बाहर निकाल भगाया। शरीर छोड़नेपर वे सब विभिन्न श्रेष्ठ लोकोंमें जा पहुंचे।

कौशिकके स्वागतके लिये स्वर्गमें लक्ष्मी भी गाती हुई चली आई। जब देवता वहाँ आए तब लक्ष्मीने उन्हें

दासियोंके द्वारा दूर हटवा बिठाया और तुम्बुरुको बुलाकर उससे वहाँ गायन-वादन कराया जाने लगा। इसपर देवताओंने लक्ष्मीको शाप दिया कि तुमने अपनी दासियोंसे हमें हटवाया है इसलिये तुम राक्षसीके गर्भसे उत्पन्न होगी और राक्षसियाँ तुम्हें पृथ्वीपर डालती आवेंगी। लक्ष्मीने शाप स्वीकार करके कहा कि आप इतनी कृपा कीजिएगा कि जो राक्षसी मुनियोंके रुधिरका कलश पी जाय उसी रुधिरसे मेरा जन्म हो।

हरिमित्र-उपाख्यान

एक बार भगवान् ने नारदसे कहा कि देखो, मैं तो केवल कीर्तनसे ही प्रसन्न हुआ करता हूँ। इसलिये तुम गायनमें प्रवीण होना चाहो तो मानसके उत्तरमें गान-बन्धु नामक उलूकसे संगीत जा सीखो। उससे मिलनेपर उसने कहा- पहले एक धर्मात्मा राजा बहुत दान-पुण्य तो किया करता था पर गायन केवल अपनी कीर्तिका ही कराना चाहा करता था, यहांतक कि अपने पास रहनेवाले विष्णुभक्त हरिमित्र ब्राह्मणके नारायण-भजनसे भी रुष्ट होकर उसने उसका सारा धन छीनकर उसे राज्यसे बाहर निकाल दिया। मृत्यु होनेपर जब राजाको कुछ भी भोजन करनेको नहीं मिला तब पूछनेपर यमने उससे कहा कि हरिमित्रके साथ जो तुमने दुर्व्यवहार किया है उसीसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई जा रही है। अब तुम पर्वतकी खोहमें जाकर अपनी ही देह नोच-नोचकर खाते रहा करो। वही राजा मैं उलूक हो गया हूँ। एक दिन दिव्य रूपमें हरिमित्रने मेरी कथा सुनकर मुझे आ क्षमा किया। उन्हींके प्रसादसे अब मैं नारायणका गान गाकर गायनाचार्य हो गया हूँ।

नारदकी संगीत-साधना

गानबन्धु उलूकने नारदसे कहा कि आप सब लाज-संकोच छोड़कर संगीत सीखिए क्योंकि स्त्री-संगम, गीत, भूख, किसीसे मिलनेपर बातचीत करने, अनाज और रुपए-पैसे के लेन-देन, आय और व्यय, भोजन और व्यवहारमें लाज-संकोच छोड़नेवाला व्यक्ति ही सुख पाया करता है

स्त्रीसङ्गमे तथा गीते क्षुतेऽन्वाख्यानसङ्गमे। व्यवहारे च धान्यानामर्थानां च तथैव च॥
आयव्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्। आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्॥

इसी प्रसंगमें उन्होंने बताया कि बहुत संकुचित स्थानमें, गुप्त स्थानमें, ढके हुए स्थानमें, बहुत हाथ फैलाकर या सिकोड़कर, बहुत मुंह फैलाकर, जीभ दबाकर, केवल अपनी ओर देखते हुए, ऊपर भुजा उठाकर, केवल ऊपरको देखते हुए, हँसते हुए, डरते हुए, भूख में, शोकमें, प्यास लगनेपर या किसीको स्मरण करते हुए और एक हाथसे ताल देकर नहीं गाना चाहिए।

इन नियमोंके अनुसार नारदने 46 सहस्र स्वर-भेद सीख लिए और गानबन्धुसे कहा कि एक कल्प बीत जानेपर तुम गरुड हो जाओगे। किन्तु जब तुम्बुरुको जीतने के लिये नारद उनके पास पहुँचे तब देखा कि वहाँ सहस्रों स्त्रियाँ अंग-भंग किए पड़ी हुई हैं। पूछनेपर उन्होंने बताया कि हम रागिनियाँ हैं। आप जब गाते हैं तब हमारी यही दशा हो जाया करती है और जब तुम्बुरु गाते हैं तब हम ठीक हो जाती हैं। नारद तत्काल वहाँसे उठकर विष्णुके पास चले गए। उन्होंने भी कहा कि अभी तुम तुम्बुरुके समान नहीं हो पाए हो। जब मैं कृष्ण रूपसे अवतार लूँगा तब तुम्हें संगीत में पक्का कर डालूँगा। अभी तुम सबको संगीत सिखाते हुए संसारमें विचरण करते रहो।

सीताका जन्म

सीताके जन्मकी कथा बताते हुए वाल्मीकिने भरद्वाजसे कहा- जब रावणके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उससे वर माँगनेको कहा तब उसने कहा- मैं अमर हो जाऊँ।' ब्रह्माने कहा कि अमर तो कोई हो नही सकता। कोई दूसरा वर माँग लो। रावणने कहा कि अच्छा, जब मैं अज्ञानसे अपनी दी कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छा करूँ, तभी मेरी मृत्यु हो। 'ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्मा तो चले गए। पर इसी मदमें रावण दण्डकारण्यके ऋषियोंके पास पहुँचकर उनके शरीरोंमें बाण चुभो चुभोकर कलसे में उनका रक्त निकाल-निकालकर भरने लगा। उनमेंसे गृत्समद ऋषिने भगवान् से प्रार्थना की थी कि लक्ष्मी मेरी कन्या हो। अतः, वह कुशाग्रसे दुग्ध उठाकर उसी दिन कलसे में डालकर चला गया जिस दिन रावणने कलश में ब्राह्मणों का रुधिर भरा था। वह कलश अपनी पत्नी मन्दोदरी को ले जाकर देते हुए रावणने कहा कि यह मुनियोंका रुधिर न तो किसीको देना न चखना । यह कहकर वह दानव, यक्ष और गन्धर्वो की कन्याएं मन्दर और सह्य पर्वतपर ला लाकर जुटाने लगा। मन्दोदरीने रावणकी यह कुचाल देखकर सोचा कि बस यही तीक्ष्ण रुधिर पीकर अपने प्राण दिए डालती हूँ। उसे पीना था कि मन्दोदरी गर्भवती हो गई । तब उसने विमानपर चढ़कर कुरुक्षेत्र में अपना गर्भ निकालकर धरतीपर ले जा धरा और सरस्वती में स्नान करके लंका लौट आई। कुछ समयके उपरान्त जब जनकने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करते हुए सोने का हल चलाना प्रारम्भ किया तब वहाँ एक कन्या धरतीमेंसे प्रकट हो निकली। उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारी कन्या होगी। इसका नाम सीता होगा। इसके पालन करनेसे जगत् का बहुत कल्याण होगा । इस प्रकार सीताजीका जन्म हुआ।

परशुरामको रामके विराट रूपका दर्शन

जब जानकीसे विवाह करके राम अपने पिता दशरथके साथ अयोध्या लौट रहे थे तभी मार्गमें उन्हें आर्चीकनंदन परशुराम आ मिले। उन्हें देखकर रामने हँसते हुए उनसे पूछा- कहिए, आपका क्या प्रिय करूँ? परशुरामने अपना धनुष बढ़ाते हुए कहा- यह रहा क्षत्रियोंका घातक धनुष। यदि सामर्थ्य हो तो इसे झुका चढ़ाइए। रामने कहा- क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंके आगे अपना बल नहीं दिखाना चाहिए।

जब परशुराम बहुत हठपर उतर आए तब रामने धनुष् चढ़ाकर पूछा- अब क्या करूं? परशुरामने एक तीक्ष्ण बाण देकर कहा- इसे कानतक खींच तानिए। रामने कहा- अच्छा, आपका दर्प अभीतक बना हुआ है? दिव्य दृष्टिसे मेरी ओर देखिए। परशुरामको झट रामका विराट् रूप दिखाई दे गया। वह बाण परशुरामका सारा तेज खींचकर न जाने कहाँ चला गया। तब रामको प्रणाम करके परशुराम महेन्द्र पर्वतपर चले गए। वहाँ उनके पितरोंने कहा कि तुमने विष्णु के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। जाओ, वधूसरकी पवित्र नदी में स्नान करके पुनः वैसे ही तेजस्वी हो जाओ। उधर राम भी सबको साथ लेकर अयोध्या लौट आए।

सीताहरण, रावण-वध और रामका राज्याभिषेक

जब सीता और लक्ष्मणके साथ राम दण्डकारण्यमें पर्णशाला बनाकर रह रहे थे तभी सीताको रावण हर ले गया। राम और लक्ष्मण सारे वनमें उन्हें ढूँढ़ते फिरने लगे। उनके नेत्रोंसे बहे हुए आँसुओंसे ही बनी नदीका नाम वैतरणी पड़ गया जिसमें स्नान-दान करनेसे पितर तरते और तृप्त हो जाते हैं। वहाँसे राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वतपर चले गए

जहाँ पाँच मन्त्रियोंके साथ वानर सुग्रीव अपने भाई बालीके डरसे छिपा रहा करता था। उन्हें बालीका भेजा कोई वीर समझकर सुग्रीवने हनुमान् को उनका भेद लेने भेज दिया। वहाँ पहुँचकर हनुमान् देखते क्या हैं कि सामने साक्षात् चतुर्भुजी विष्णु और शेष विराजमान हैं। तब हनुमान् ने नेत्र बन्द करके उनका ध्यान करते हुए कहा कि मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान हूँ। रामने कहा कि मैं ही सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, महापुरुष हूँ। मुझे वे ही लोग प्राप्त कर पाते हैं जो मेरी भक्ति किया करते हैं।

रामने हनुमान् से कहा कि दुरात्मा रावण हमारी भार्याको हर ले गया है। तुम सुग्रीवके साथ हमारी मित्रता ले चल कराओ। तत्काल हनुमान दोनोंको कन्धेपर चढ़ाकर सुग्रीवके पास लिए चले गए और उन्होंने सुग्रीवसे रामकी मित्रता करा दी। रामने भी बालीको मारकर सुग्रीवको राज्य दे दिया। सुग्रीवने भी देश-देशान्तरोंसे असंख्य वानर बुला भेजे। हनुमान् और अंगदके कन्धोंपर चढ़कर राम और लक्ष्मण समुद्रतटपर जा पहुंचे और लंका पहुंचनेका उपाय सोचने लगे। लक्ष्मणने समुद्रसे कहा कि तुम अपने आत्माको स्तंभित कर दो (अपना जल जमा दो) तो तुम्हारे ऊपरसे वानर पार चले जायेंगे। जब समुद्रने उनकी बात नहीं सुनी तब लक्ष्मण क्रोधपूर्वक समुद्रमें कूद पड़े और अपनी देहकी ज्वालासे समुद्रका जल सोखने लगे। फिर तो जलके सब जीव व्याकुल होकर हाहाकार कर उठे। रामने लक्ष्मणको रोककर कहा- यह तुमने ठीक नहीं किया। अब मैं सीता-वियोगसे उत्पन्न आँसुओंसे ही इसे भरे डालता हूँ। यह कहकर उन्होंने समुद्रको ज्योंका-त्यों भर डाला।

[यह कथा भी इस रामायणमें नई और अद्भुत है।]

समुद्रने जब आकर रामकी स्तुति की तब रामने समुद्रपर सेतु बाँध दिया और लंकामें जाकर रावणको मारकर विभीषणको साथ लेकर वे सीता, सुग्रीव, हनुमान् आदिके साथ पुष्पक विमानपर चढ़कर अयोध्या लौट आए और वहाँ उनका राज्याभिषेक हो गया।

सीताके हाथ से सहस्रमुखी रावण का वध

एक बार रामकी सभामें मुनियोंने आकर कहा कि आपने रावणको मारकर लोकका तो बड़ा कल्याण किया, किन्तु सीताजीने बहुत दुःख पाया। यह सुनकर सीता हंसकर बोलीं कि भला रावणको मारना भी कुछ मारनेमें मारना था। विवाहसे पूर्व एक ब्राह्मणने मेरे पिताजीसे आकर कहा कि मैं यहाँ चातुर्मास्य करना चाहता हूँ। मैं भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने में लगी रही। उस ब्राह्मणने एक दिन मुझसे कहा कि पुष्करके चारों ओर बड़ेसे सागरपर बस सहस्र दलवाला ब्रह्माका कमलासन है। वहाँ सुमाली राक्षसकी पुत्री कैकसीसे विधवा मुनिके दो रावण उत्पन्न हुए थे। एक तो सहस्र मुखवाला था और दूसरा दस मुखवाला। उनमेंसे छोटा रावण तो शिवजीकी कृपासे कुबेरकी बनाई लंकामें जा रहने लगा था और दूसरा पुष्कर द्वीपमें रहा करता है, जो सूर्यको गेंद बनाकर खेला करता है। जब सबको पराजित करके वह सब लोकोंको त्रास देने लगा तब उसके पितामह पुलस्त्य और पिता विश्रवाने आकर उसे डपट रोका। लंकावाला रावण उसीका छोटा भाई था। ये कथाएँ सुनाकर वह ब्राह्मण तीर्थयात्राके लिये चला गया। मेरे स्वामीने तो केवल उस दस सिरवाले रावणको मारा है, उसीकी लंका जलाई है और सागरपर पुल बाँधा है, किन्तु इसमें मुझे कुछ आश्चर्यकी बात नहीं लगी इसीलिये मैं हँस पड़ी थी, क्षमा कीजिएगा।

रामने मुनियोंसे कहा कि मैं आज ही इस दूसरे रावणको भी जीते आता हूँ। चारों भाई और सुग्रीव आदि वानर

सब पुष्पकपर चढ़कर चल पड़े। सीता भी रामके साथ ही उस सहस्रमुखी रावणको जीतने चल दी। वहाँ पहुँचकर जब रामने अपने धनुष्.की टंकार की तब सहस्र मुखवाला और दो सहस्र भुजाओंवाला वह रावण सिंहनाद करता हुआ बाहर निकल आया। उसके साथ अनेक राक्षस भी युद्ध करने निकल आए और रामपर टूट पड़े।

बाहर निकलते ही उस सहस्रमुखी रावणको सूचना मिली कि अयोध्याके राजा राम आए हुए हैं। जब वानरोंको मारसे राक्षसोंके छक्के छुट गए तब वह सहस्रमुखी रावण स्वयं युद्ध करने आ डटा। उसने ऐसा वायव्यास्त्र चलाया कि भरत, शत्रुघ्न, हनुमान् आदि सब वीर अपने-अपने घर पहुँचकर रामकी चिन्ता करने लगे जो सीताके साथ पुष्पक विमानपर ही बैठे हुए थे। रावणका यह दुष्कर्म देखकर रामको बड़ा आश्चर्य हुआ। रामने जब अगस्त्यजीका दिया हुआ बाण उसपर छोड़ा तो वह जलता हुआ बाण वेगसे चल तो पड़ा किन्तु उस रावणने उसे बाएं हाथसे पकड़कर दो टूक कर डाला। फिर उसने रामपर ऐसा बाण चलाया कि राम मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब सीता विकट रूप बनाकर उस रावणके रथपर टूट पड़ी और उन्होंने पलक मारते उस रावणके सहस्रों सिर भी खड्गसे काट डाले तथा अन्य राक्षस योद्धाओंको भी क्षण भरमें ढेर कर डाला। रावणके सिरोंको माला पहनकर वे उन्हें गेंद बना बनाकर खेलने लगीं। तत्काल सीताके रोमकूपोंसे सहस्रों भयंकर आकृतियोंवाली माताएँ भी प्रकट होकर उन सिरोंसे खेलने लग गईं। उस समय जानकीके भयंकर ताण्डव नृत्य और अट्टहाससे धरती पाताल में धँसने लगी। तब देवताओंकी प्रार्थना सुनकर शिवजी ही शव बनकर पृथ्वीको थामने के लिये चण्डी. रूपिणी सीताके पैरके नीचे आ पड़े। जब ऊपरके लोकोंकी स्थिरताके लिये सब देवता सीताकी स्तुति करने लगे, तब सीताने देवताओंसे कहा कि जब मेरे पति राम पुष्पक विमानपर मृतकके समान पड़े हैं, तब मैं संसारको कैसे बना रहने दूंगी? मैं तो इस सारे चराचर जगत् को एक ही ग्रासमें निगल जानेवाली हूँ। तब ब्रह्माने पुष्पक विमानमें पड़े हुए रामको अपने हाथोंसे स्पर्श करके चेतन कर दिया। तत्काल राम उठ बैठे और रावणको मारने के लिये धनुष उठाने लगे। किन्तु जानकीको अपने पास न देखकर वे सामने देखते क्या हैं कि महाकालीके चरणोंमें शव बने हुए महादेवजी लेटे पड़े हैं। यह देखकर रामसे ब्रह्माने कहा कि आपको व्याकुल देखकर सीताजी विमानसे कूद पड़ी थीं और भयंकर रूप धारण करके इन्होंने ही सहस्रमुखी रावणका वध कर डाला है। इनके बिना आप कुछ नहीं कर सकते थे, यही दिखानेके लिये उन्होंने यह पराक्रम किया है। रामने शोक त्यागकर जानकीसे पूछा कि तुम कौन हो? उन्होंने कहा कि मैं ही महेश्वरकी आश्रिता परम शक्ति हूँ। तब रामने ओंकारका स्मरण करके एक सहस्र आठ नामोंसे उस परमेश्वरी सीताका स्तुति की। सीताकी स्तुति करके उन्होंने कहा- अब तुम यह घोर रूप बदलकर अपने वास्तविक रूपमें आ जाओ। तत्काल जानकीजी सौम्य रूपमें आ गईं। सीताजी कहने लगीं- इस सहस्रमुखी रावणके वधके लिये मैंने जो रूप धारण किया है इस रूपसे मैं मानसके उत्तर भागमें तुम्हारे साथ नीललोहित रूपसे निवास किया करूँगी। सीताने रामसे कहा - 'वर मांगिए।' रामने कहा - 'देषि सीते! यही वर दो कि तुमने जो ऐश्वर्य रूप दिखाया है यह कभी मेरे हृदयसे न मिटे और हमारी सेनाके जो लोग तथा अयोध्याके जो मुख्य योद्धा इस रावणने उठा फेंके हैं वे सब मुझे मिल जायें। सीताने 'तथास्तु' कह दिया।

॥समाप्त॥

वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया के उपलक्ष्य में विशेष

श्रीपरशुरामकथामृत

(गिरिधरदास कृत 'अवतारकथामृत' से)

'अवतारकथामृत' नामक यह महाकाव्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द्र की कृति है। उनके गुरु गिरिधर दास थे। गुरु के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों की रचना गिरिधर दास के नाम से की है। यह महाकाव्य नवलकिशोर प्रेस लखनउ से दो खण्डों में प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम खण्ड में दशावतार के रूप में भगवान् परशुराम के अवतार की सम्पूर्ण कथा छन्दोबद्ध है।

इस अंश की पुष्पिका के अनुसार संवत् 1896, अग्रहण कृष्ण प्रतिपदा, गुरुवार के दिन इस अंश का लेखन पूर्ण हुआ था। तदनुसार यह 1840ई. के अक्टूबर में रचित अंश है।

अथ परशुरामकथामृतं लिख्यते

दोहा

चरणकमल गोपाल के देत अमल आनन्द।
तैसेइ वल्लभ लालके दूरि करें दुख द्वन्द॥1॥
अर्जन मोह महीप भुजकामादिक परिवार।
परशुराम को नाम सोइ छेदक कठिन कुठार॥2॥
सुमिरि हृदय गुरुदेव को भृगुपति चरित उदार।
बरणत बर विश्वास लै करि दैहैं करतार॥3॥

जयकरी छन्द

भृगु सुत च्यवन भये मुनिराइ। से निज व्याह चहे हरषाइ॥
गाधि नृपति ते भाषेउ जाइ। देहु सुता निज मो कहं राइ॥4॥
तव नृप शोचि शाप भय छाइ। कहत भये यह युक्ति बनाइ॥

श्यामकर्ण हय सहस मंगाइ। तबहिं लेहु कन्यहि हरषाइ॥5॥
सुनि मुनि गये बरुण पहं धाई। तहं तें नृपहि दियो हय ल्याइ॥
सत्यवती गुण गण अधिकाइ। नृपति सुता व्याही सतभाई॥6॥
एक समय सो पति सुख पाइ। बोली वचनहिं शीश नवाइ॥
मोहि अरु मम जननिहि ऋषिराइ। सुवन होय से करिय उपाइ॥7॥

दो0 द्विज क्षत्रीके दोय चरु करि दीने मुनिराइ।
तेरो यह यह जननिको तियहि दीन्ह समुझाइ॥8॥

चौपाई

लै तेहि गई जननि के पास। चरु दै कह्यौ तासु इतिहास॥
लै तिय बुद्धि जननि कह धन्या। निज माहि मम लै ते कन्या॥9॥
तब चरु ह्वै है नीको भारी। तातें मैं या कहति बिचारी॥
तोहि तो पति समर्थ सब अहैं। करिहैं क्षणहिं सकल जो चहै॥10॥
इमि कहि बदलि चारु चरु खायो। सो वृत्तान्त च्यवन तय पायो॥
कह्यौ करम कीनो महि नीको। होइ बिलोम विप्र क्षत्री को॥11॥
सत्यवती तब विनय वखानी। बोले बहुरि बचन मुनिज्ञानी॥
सुतको सुत क्षत्री सम होई। सुनिकै मोद गह्यौ मन सोई॥12॥
तब यमदग्नि भये सन्तान। परम तेजनिधि जनक समान॥
तिन सुरेणुका नारि बिबाही। बसु मदादि सुत जनमें ताही॥13॥
लघु श्रीराम श्याम बपु धारै। अक्षय त्रितिया दिन अवतारे॥
बल बुधि विक्रमतेज निधान। कर कुठार बाणासन बाण॥14॥

दो0 परशुराम दुर्द्धर शरण अमरस के अंभोधि।
चहैं दहैं संसारको एक निमिष महं क्रोधि॥15॥

चौपाई

तौन समय शशिबंशी भूप। अर्जुन अरिहि कृतान्तस्वरूप॥
दत्तात्रेय विष्णु अवतार। तिनकर सेवन कीन अपार॥16॥
दत्त दत्तबर से नर पाल। भयो अजेय समर विकराल॥
सहसबाहु रिपु शशि पैं राहु। समर चाहु नित हैहय नाहु॥17॥
सो रावणसों रण करि क्षण में। लीनो बांधि खेल गुणि मन में॥
करतें शरि रोके पुनि रेलै। मन्दरादि गिरिकन्दुक खेलै॥18॥
सोइ प्रचण्ड क्षत्री इकबार। गो मुनि आश्रम करत शिकार॥
यामदग्नि बिन हे यमदग्नि। धूमविहीन पीन तप अग्नि॥19॥
भूप जानि मुनि नीति निकेत। कीन्ह निमंत्रन सैन समेत॥

कामधेनु मुनि के आगार। तिन सब कियो राज संभार॥20॥
दो0 गज हय मनुजन हेत तहं भोजन किये तयार।
घृत दधि पय सरिता बही मोदकमिष्ट पहार॥21॥
चौपाई
असन बसन भूषण धन धामा। यथा योग कीनी सब सामा॥
बार बधू नाचहिं विधि नाना।गान तान सामान बंधाना॥22॥
सब प्रकार सब बस्तु न दीनी। मुनिबर नृप की जाफत कीनी॥
प्रात समय हैहय अभिमानी। करामात सुरभीकी जानी॥23॥
मुनि ते कहा देह मोहिं गाइ। तब तिन नृपहि कहा समुझाइ॥
तुम कहं वैभव सकल अपार। हम तपसी कहं इहै अधार॥24॥
कहा करहु गे लैके सुरभी। होइहि तुम्हें अधर्म अउरभी॥
मुनि को सहस बाहुबलवाना। अति मदमत्त नेक नहिं माना॥25॥
दो0 छोरि लई सुरभी तबै चलेउ चंड नर राउ।
मुनि कछु नहिं भाषत भये संतत शील सुभाउ॥26॥
सो0 आये तब भृगुराम सुन्यो हकाल नृपाल को।
कही जनक अभिराम जाफत की आफत सकल॥27॥
दो0 चले कोप विस्तारि कै शर कुठार धनु धारि।
देख्यो मग अर्जुन कटक गर्जत भये प्रचारि॥28॥
चौपाई
फिरो नृपति सुनि सदल रिसाइ। गर्ज्जत घन समान अधिकाइ॥
सत्रह अक्षोहिणी सजाइ। चलेउ भेरि सहनाइ बजाइ॥29॥
हय गजरथ मनु जन के ठट्ट। चले चलांक धरे धनु पट्ट॥
मारु मारु धरु धरु ध्वनि भरी। फिरत सैन धरणी थरथरी॥30॥
घने शूल असि चर्म चमक्कहिं। घने बीर रण धीर तमक्कहिं॥
घने ठने रण प्रबल गरज्जहिं। जो सुनिकै रिपु हृदय लरज्जहिं॥31॥
दो0 चहूं दिशा ते घेरिकै परशुराम कहं बीर।
लगे बारिधर से तजन तीक्षण कोटिन तीर॥32॥
हरिगीती छन्द
तीक्षण सुकोटिन तीर लागे धीर तजन प्रचारिकै।
चहुं ओर जिनि घनघोर घेरे राम रबि ललकारिकै॥
आयुध अनेक अनेक बरसहिं बीर भरसहिं रिसछये।
अब मारि लेहु न जाइ जीवत बात इमि बरणत भये॥33॥

तब राम छबि अभिगम तम तहं बरकाम कहं करते भये।
रिसि पूरि एक सटेक बीर अनेक सों लरते भये॥34॥
शिर चरण करगर धरणतें सब धरणि कहं भरते भये।
घन वृन्द में रबि से निकरि अरि प्राण कहं हरते भये॥35॥
आकर बिधनु अति हरषि मनु शर बरषि रिपु गण बधत भे।
हय हय हयन कहं काटि काटि महान संगर नथतभे।
मथि मथि सुरथ पथ किये चूरण धरणि पूरण सब करी।
पद चारि सुरपद चारि कीन्हे मारि बहु विधि ता घरी॥36॥
कर काल दण्ड प्रचण्ड सो कोदण्ड सोह्यौ राम को।
बलधाम पूरण काम तेज ललाम रण अभिराम को॥
जे जे गये हरि साम्हने ते ते गये हरि लोक में।
जिमि जलत ज्वलन महान मैं तिमि पराक्रम ओक मैं॥36॥

दो0 क्षण में श्रोणित की सरित प्रगट करी बिकराल।
भरी मेदिनी मृतक सों परशुराम रिपु काल॥37॥

भुजंगप्रयात

बड़ो बीर बीरान में सो निहंता महाधीर धीरान को धीर हंता।
लस्यो लै कुठारै महा शत्रु अर्ही। लसै ज्यों प्रलै काल केरो कपर्ही॥38॥
तहां सुण्ड वीतुण्ड के काटि काटी महा रुण्ड मुण्डान सों भूमि पाटी।
ध्वजा छत्र टूटे ससैं युद्ध भारे मनो व्योम ते टूटि तारे कतारे॥39॥
पड़े वीर जेहे महीपाल केरे सबै भेजि दीने तवै काल डेरे।
महा कच्छ मैं ज्यों लगै दीह दावा। तथा धीर सोहो महा रोस छावा॥40॥
घने गीध औ स्यार को मोद दीनो। रणै जीति मानो महा भोज कीनो॥
यमागार में कै लमा भट्ट ठट्टै नरेशे कियो वाहिनी विन्नु झट्टै॥41॥
लस्यों कोप धारी महा सो कुठारी तहां घोर संग्राम में शत्रु हारी॥
प्रले काल को सो कस्त्यो काल भारी लस्यो लैपि नाकै मनो अंधकारी॥42॥

दो0 इमि निज दलका नाश लखि महा कोप कहं ठानि।
चलत भयो अर्जुन नृपति अर्द्ध सहस धनु तानि॥43॥

चौपाई

बरसत भो बाणन की धारैं। महा मेघ समकरि ललकारैं॥
ताके सरबर सरप सरीस। दौरि रहे साजोर सब दीस॥44॥
तब बलधाम राम रणधीर। चले प्रचारत डारत तीर।
एक धनुष अति लाघव टाटत। सिगरे शर रिपु बरके काटत॥46॥

पुनि सो गरजि महारण कर्कस। खाली किये करोरन तर्कस।
बाण पंचशत एकहि बार। त्यागत बहुरि न लागति बार॥47॥
महामेघ सों अंग प्रचण्ड। तड़ित समूह सरिस कोदण्ड॥
बेगवायु बल बढ़्यौ अपार। बरष्यौ बिबिध बाण की धार॥48॥
सहसबाहु को लखि बल भारी। कोपित भये परशु धनुधारी॥
अरि के काटि काटि शरभारे। मेघ सरिस गरजे हरि प्यारे॥49॥
लै कुठार भुज काटन लागे। रण बसुधा कहं पाटन लागे॥
जिमि महान पादप की डारहिं। काटै नर कर धारि कुठारहिं॥50॥

दो0 सहस परशुधर काटि इमि मनुजनाथ के हाथ।
मुदा जुदा करते भये धरतें गर सह माथ॥51॥

सो0 देखि पिताको नाश अयुत सुवन नरपाल के।
भागि गये भरि त्रास गांस भरे अपने सदन॥52॥

चौपाई

मारि महारिपु गाय लिवाइ। जनक पास आये मुनि राइ॥
वंदि चरण जोरे दोउ हाथ। बोले वचन वीर बर नाथ॥53॥
हे प्रभु अभिमानी मद छायो। सहसबाहु यम सदन सिधायो॥
तब प्रताप तेहि वधि सह सैन। लायो गऊ छोरि निज ऐन॥54॥
सुनिकै परशुराम को बानी। मुनि जमदग्नि ज्ञानकी खानी॥
बोले क्षिप्र विप्र के नायक। बिन धर्म संयुत सब लायक॥55॥
तात अधर्म कियो यह भारी। बालक बुद्धि वृथा विस्तारी॥
क्षमा धर्म है ब्राह्मण केरो। नहि चाहिय अस कोप बड़ेरो॥56॥
युद्ध धर्म क्षत्रीको अहै। द्विज जों करै शर्म नहिं लहै॥
हम भिक्षक कहं चाहिय काहा। सब पर शील दया निरवाहा॥57॥
जो नृप गयो रह्यो लै गाइ। तौ का हरि नहिं सके जिवाय॥
इतनी करी वृथा कलकानि। साहस करे विप्र पन हानि॥58॥
तुम मार्यौ नर चातहि ताता। तातें भयो पाप दुखदाता॥
नरपति बर कहं मारै जोय। अधिक ब्रह्म हत्या ते होय॥59॥

दो0 तातें तीरथ करहु तुम जातें यह अघ जाइ।
अव अस कोप न कीजियौ जासों धर्म नसाइ॥60॥

तोटक

सुनिकै पितु बात कुठार धरे। अभिराम प्रणामहिं राम करे।
करिबे महितीरबे चारु चले। संग सोहहिं विप्र अनंद रले॥61॥
जित जाहिं नहांहिं तहां पहले। वर बिप्रन देहिं सुदान भले।

तहं की विधि तें उपवास करें। निज तीरथ को अघनास करै॥62॥
इमि तीरथ संचित एक कर्यौ। सब पाप कुतापहिं आप दर्यौ॥
पुनि आइ पिता दिग मोद भए। पद परते भरि प्रेम भए॥63॥
लखिकै सुत को यमदग्नि मुनी। हतपाप अनंत प्रताप गुनी॥
अति छावत मोद भये मन मैं। बहु आशिष दीन्हि सोई क्षण में॥64॥

दो0 इमि निवसें निज पितु सदन पितु सेवी श्रीराम।
तेजपुंज प्रभुता भरे परम पराक्रम धाम॥65॥

चौपाई

इक दिन चवन सुबनकी नारि। गई कलश लै भरिबे वारि॥
नदी तीर आई छबि छाई। तित देखी शोभा अधिकाई॥66॥
वर गन्धर्व चित्ररथ नाम। जनक्रीड़त ले बाल ललाम॥
कंठ माहिं अर्पित भुजदंड। सरिस वितुण्ड सुंड छविमंड॥67॥
मद विह्वल लोचन रतनारे। बसन मिहीन पीन तन धारे॥
भरि भरि अंजुलि मेलत पानी। हास विलास कलासर सानी॥68॥
कवरी खुली खसत परसून। मुख प्रकाश चंदहु ते दून॥
सटि सटि वसन रहे तिय अंग। पिय जिय करत अनंग उमंग॥66॥

दो0 करन कमल पुनिकर कमल अमल कमल से नैन।
चरण कमलसे चारु अति कमल बरण छबिऐन॥70॥
कमल बदन सुखमा सदन कमल माल उरमाहिं।
कमलभरी सरिमें खरी वनिता वृन्द नहाहिं॥71॥
जलभीने दरशाहिं अति उन्नत उभय उरोज।
जनु सरोजकी कलिन पैं ओस परी भरि ओज॥72॥

चौपाई

छवि निरखत रेणुका लुभानी। घरी एक तित खरी बितानी॥
पुनि पतिको भय भरि भरि वारी। गई आसु जित मुनि ब्रत धारी॥73॥
हेतु विलंब जानि धरि ध्यान। बोले कोप गहे मुनित्रान॥
तब मन लग्यो और नर पाहिं। है अब मम लायक तू नाहिं॥74॥
इमि कहि कही सुतन सों बानी। मातु शीश कहं काट ज्ञानी॥
सुनि तिन सुतन बात नहिं मानी। तब मुनि रामहि देखि बखानी॥75॥
तात भ्रात सह मातहि मारहु। धर तें भिन्न शीश करि डारहु॥
सुनि गुनि जनक बचन मुनि ईश। काटि लिये सबहिन के शीश॥76॥
ह्वै प्रसन्न तब जनक बखानो। मांग वर जोई मनमानो॥
राम कहा जीवहिं सुत माता। तहिं जानहिं मोहिं राम निपाता॥77॥

दो0 ह्वै प्रसन्न मुनिवर कह्यौ एवमस्तु हे राम।
सुतन सहित जीवत भई तब रेणुका ललाम॥78॥

चौपाई

एक काल अर्जुन सुत सारे। रामरहित मुनि धाम पधारे॥
तहां सकोप देखि मुनि वृद्धहि। बध्यो तेज तप ज्ञान समृद्धहि॥79॥
तब रेणुका रुदन किय भारी। हा हा राम शत्रु वधकारी॥
सुनिकै मातु रुदन तित आइ। देख्यो शीश विना मुनिराइ॥80॥
लागे करन महान विलाप। पूर्यौ हृदय भूरि संताप॥
हा हा तात गये कित आपु। कहत न कछु लखि मम संतापु॥81॥
अहो कर्यौ दुष्टन अघ काजु। नहिं चीन्ह्यौ कछु धर्महिं आजु॥
क्षत्री भये महामदशाली। अविचारी शठ अधी कुचाली॥82॥

दो0 तातें सबको मारि महि करों अक्षत्री नाम।
तब कहवावों जगत में भृगु कुलमण्डन राम॥83॥

बसुकला

इमि कहि सुकोपि। मुनि चले चोपि॥ कर गहि कुठार। अति निशित धार॥84॥
रिपुपुरी जाइ। बलकों बढ़ाई॥ सुत दश हजार। जे बल अपार॥85॥
तिनकों निपांति। डार्यौ सुभांति॥ शिरका पहार। कीनो अपार॥86॥
पुनि घुमि घूमि। नृप रहित भूमि॥ कीन्ही प्रचण्ड। क्रुद्धित अखण्ड॥87॥
एकईस बार। भार्गव कुमार॥ कीन्ही निछत्र। बसुधा सबत्र॥88॥

सो0 दुख तें इकइस बार उर कहं ताड़्यौ रेणुका।
तातेराम उदार तित निहिं बार निछत्र किय॥89॥

चौपाई

तबहिं स्यमन्तक पंचक आइ। शोणित के नब कुंड बनाइ॥
कीन्हों यज्ञ सकल अघ मोचन। श्री भृगुनाथ पितर मन रोचन॥90॥
होता कहं दीनी दिशि प्राची। ब्रह्मा को दक्षिण रंग राची॥
पश्चिम अध्वर्जहि मुनि ज्ञाता। उत्तर दिशा दई उद्गाता॥91॥
सकल भूमि कश्यप कहं दीनी। भई काश्यपी तबहिं नवीनी॥
इमि करि यज्ञ सज्ञ मुनि राइ। मुनिन सहित बर नदी नहाइ॥92॥
पाप ताप दाहि लसे सुजान। भानु यथा अंबर अस्थान॥
तब यमदग्नि दिव्य तन पाइ। भे ऋषि सप्तम नभ मैं जाइ॥93॥
प्रमुदित होय पितर तब आए। बर मांग बोले हरषाए॥
राम कहा ये रुधिर तलाई। तीरथ होहिं देह सुखदाई॥94॥

एवमस्तु कहि पितर सिधाए। राम हृदय आरामहि पाए॥
विगत राग ह्वै कै गुणधाम। कीन्ह महेंद्राचल विश्राम॥95॥
दो0 इमि श्री भृगुपति राम को जन्म परम अभिराम॥
जे सुनिहैं पढ़िहैं मनुज ते लहिहै मन काम॥96॥
जब जब होत अधर्म है धरणी मध्य अपार॥
तब तब राखन धर्म को विष्णु लेत अवतार॥97॥
को दयाल अस दूसरो प्रणत दुःख हंतार॥
जा पैं जाइय शरण को तजिकै नन्दकुमार॥98॥

सो0 श्रीवल्लभके लाल दीनदयाल कपालमति।
तिन्हकी कृपा विशाल भोपूरण वह चरित अति॥99॥
दो0 रस नव वसु अरु चन्द्रमा संवत अगहन कृष्ण॥
प्रतिपद गुरु दिन यह कियो पूरण गुणनिधि कृष्ण॥100॥
गिरिधर गिरिधरलाल के पदपराग की बास।
चाहत निशि दिन दीन अति लघुमति गिरिधरदास॥101॥

इति श्रीगिरिधरदासविरचितं परशुरामकथामृतं समाप्तम्॥ ॥ शुभमस्तु॥

***

चतुर्भुज दास कृत जगज्जीवनचरितम्

एक समय गलता में जगज्जीवन दास नामक एक महात्मा हुए। उनकी ख्याति से ईर्ष्या करते हुए दिल्ली के यवन राजा ने उन्हें दिल्ली आने का संवाद भेजा। राजा की योजना थी कि वे ज्यों ही दिल्ली आयेंगे, उन्हें हाथी से कुचलवाकर मार दिया जायेगा। जगज्जीवन दास आषाढ मास में जगन्नाथपुरी की रथयात्रा में सम्मिलित होने के लिए जाने वाले थे। दिल्लीश्वर की आज्ञा पाकर वे ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी के दिन दिल्ली पहुँचे। यवन राजा ने एक विशाल हाथी को शराब पिलाकर और मत्त कर दिया तथा जगज्जीवन दास के आने के मार्ग पर दौड़ा दिया। वह हाथी ज्यों ही सन्त शिरोमणि जगज्जीवन दास के सामने आया तो वह हाथी नतमस्तक होकर उनके सामने झुक गया। सन्त शिरोमणि ने भी उस हाथी को वैष्णव मन्त्र की दीक्षा दे डाली। यह देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ और उसने सन्त से क्षमा माँगी। उसके बाद से वह हाथी रामदास के नाम से विख्यात हुआ।

सन्त जगज्जीवनदास का यह चरित संस्कृत भाषा में सन्त चतुर्भुज दास ने 'जगज्जीवनचरितम्' के नाम से लिखी है। अभी यह पाण्डुलिपि के रूप ही उपलब्ध है। इसमें अनुष्टुप् छन्द के कुल 78 श्लोक हैं। इसका सम्पादन पं. भवनाथ झा के द्वारा किया जा चुका है। आषाढ, 2078 के अंक में इसका प्रकाशन प्रस्तावित है।

परशुराम जयन्ती अक्षय तृतीया पर विशेष

परशुराम के द्वारा सहस्रार्जुन का वध

(लल्लू लाल कृत 'प्रेम सागर' से उद्धृत)

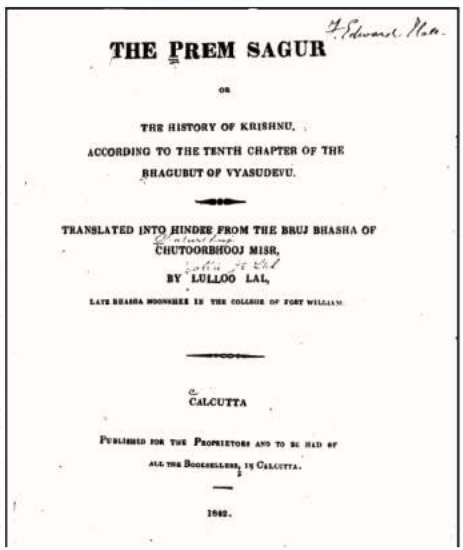

THE PREM SAGUR

OR

THE HISTORY OF KRISHNU,

ACCORDING TO THE TENTH CHAPTER OF THE

BHAGUBUT OF VYASUDEVU.

TRANSLATED INTO HINDEE FROM THE BRUJ BHASHA OF

CHUTOORBHOOJ MISR,

BY LULLOO LAL,

LATE BHASHA MOONSHEE IN THE COLLEGE OF FORT WILLIAM.

CALCUTTA

PUBLISHED FOR THE PROPRIETORS AND TO BE HAD OF

ALL THE BOOKSELLERS IN CALCUTTA.

1862.

जनभाषा के माध्यम के भागवत पर आधारित श्रीकृष्णकथा की कथा लालच दास कृत हरिचरित्र, मनबोध कृत कृष्णजन्म आदि प्राचीन शैली के काव्यों के द्वारा जन मानस में फैल चुकी थी। 1810 ई. में बुकानन ने पूर्णिया रिपोर्ट में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। 19वीं शताब्दी में हिन्दुस्तानी भाषा पढाने के उद्देश्य से इस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों के द्वारा कुछ रचनाएँ लिखायी गयीं, जिनमें कृष्णकथा से सम्बद्ध रचनाओं में चतुर्भुज मिश्र का "ब्रजविलास" तथा लल्लूलाल का "प्रेमसागर" अविस्मरणीय हैं। वास्तव में चतुर्भुज मिश्र की व्रजभाषा की इस छन्दोबद्ध रचना का हिन्दी की खड़ी बोली के गद्य में अनुवाद लल्लू लाल ने संवत् 1830 अर्थात् 1774ई. में की थी। इसका प्रकाशन 1810 ई. में फोर्ट विलियम कालेज से हुआ था। लल्लू लाल के द्वारा किया गया यह गद्यानुवाद प्रेमसागर के नाम से विख्यात हुआ। गद्य होने के कारण इसकी अधिक लोकप्रियता देखने को मिलती है। लखनउ के नवल किशोर प्रेस से इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। प्रेमसागर की भूमिका से पता चलता है कि हिन्दुस्तानी भाषा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में भी इसे सम्मिलित किया गया था।

यहाँ धर्मायण के पाठकों के लिए प्रेमसागर से परशुराम के द्वारा सहस्रार्जुन के वध का प्रसंग संकलित किया गया है। इस कथा से स्पष्ट है कि सहस्रार्जुन परशुराम का मौसा था। परशुराम ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए युद्ध में सहस्रार्जुन का वध किया। प्रेम सागर में यह कथा 82वें अध्याय में आयी है।

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज! अब मैं प्रभु के कुरुक्षेत्र जाने की कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ, कि जैसे द्वारिका से सब यदुबंसियों को साथ ले श्री कृष्णचन्द औ बलराम जी सूर्य ग्रहण न्हानें कुरक्षेत्र गए। राजा ने कहा महाराज आप कहिये मैं मन दे सुनता हूं। पुनि श्री शुकदेवजी बोले कि

महाराज! एक समय सूर्य ग्रहण के समाचार पाय श्री कृष्णचन्द औ श्री बलदेव जी ने राजा उग्रसेन के पास जाय के कहा कि महाराज बहुत दिन पीछे सूर्य ग्रहण आया है, जो इस पर्व्व को कुरक्षेत्र में चलकर कीजे तो बड़ा पुन्य होय, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि कुरक्षेत्र में जो दान पुन्य करिये सो सहस्र गुणा होय। इतनी बात के सुनते ही यदुबंसियों ने श्री कृष्णचन्द जी से पूछा कि महाराज कुरक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ, सो कृपाकर हमें समझायके कहिये।

श्री कृष्ण जी बोले कि सुनौ, यमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी तेजस्वी थे; तिन के तिन पुत्र हुए; उन में सब से बड़े परशुराम, सो बैराग कर घर छोड़ चित्रकूट में जाय रहे औ सदाशिव की तपस्या करने लगे। लड़कों को होते ही यमदग्नि ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़, वैराग कर, स्त्री सहित वन में जाय तप करने लगे। उन की स्त्री का नाम रेनुका, सो एक दिन अपने बहन को नौतने गई उस की बहन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी। नौता महाराज देते ही अहङ्कार कर राजा सहसार्जुन की रानी रेनुका की बहन हंसकर बोली कि बहन! तुम हमें हमारे कटक जिमाय सको तो नौता दो नहीं तो न दो।

महाराज! यह बात सुन रेनुका अपना सा मुह ले चुपचाप वहां से उठ अपने घर आई; इसे उदास देख यमदग्नि ऋषि ने पूछा कि आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है। महाराज! बात के पूछते ही रेनुका ने रोकर सब जों की तों बात कही। सुनते ही यमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा, कि अच्छा तू जायके अभी अपनी बहन को कटक समेत नौत आ। पति की आज्ञा पाय रेनुका बहन के घर जाय नौंत आई, उस की बहन ने अपने स्वामी से कहा कि कल तुम्हें हमें दल समेत यमदग्नि ऋषि के यहां भोजन करने जाना है। स्त्री को बात सुन अच्छा कह वह हंस कर चुप हो रहा, भोर होते ही यमदनि उठ कर राजा इन्द्र के पास गए, औ कामधेनु मांग लाए, पुनि जाय राजा सहस्रार्जुन को बुलाय लाए; वह कटक समेत आया, तिसे यमदग्नि जी ने इच्छा भोजन खिलाया!

कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित हुया, औ मन ही मन कहने लगा, कि इस ने इतने लोगों के खाने की सामग्री रात भर में कहां पाई, औ कैसे बनाई, इस का भेद कुछ जाना नहीं जाता। इतना कह बिदा होय, उस ने अपने घर जाय, यों कह, एक ब्राह्मण को भेज दिया, कि देवता! तुम यमदग्नि के घर जाय इस बात का भेद लाओ, कि उस ने किस के बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत नौत जिमाया, इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण ने झट जाय देख आय सहस्रार्जुन से कहा, कि महाराज! घर में कामधेनु है, उसी के प्रभाव से उस ने तुम्हें एक दिन में नौत जिमाया। यह समाचार सुन सहस्रार्जुन ने उसी ब्राह्मण से कहा कि देवता तुम जाय हमारी ओर से यमदग्नि ऋषि से कहो कि सहस्रार्जुन ने कामधेनु मांगी है।

बात के सुनते ही वह ब्राह्मण संदेसा ले ऋषि के पास गया, औ उस ने सहस्रार्जुन की कही बात कही। ऋषि बोले, कि यह गाय हमारी नहीं जो हम दें, यह तो राजा इन्द्र की है, हम इसे दे नहीं सकते, तुम जाय अपने राजा से कहो, बात के कहते ही ब्राह्मण ने आय राजा सहस्रार्जुन से कहा, कि महाराज! ऋषि ने कहा है, कामधेनु हमारी नहीं यह तो राजा इन्द्र की है, इसे हम दे नहीं सकते। इतनी बात ब्राह्मण के मुख से निकलते ही, सहस्रार्जुन ने अपने कितने एक जोधाओं को बुलाय के कहा, तुम अभी जाय यमदग्नि के घर से कामधेनु खोल लाओ।

स्वामी की आज्ञा पाय जोधा ऋषि के स्थान पर गए, औ जों धेनु को खोल यमदग्नि के सनमुख हो ले चले, तो ऋषि ने दौड़कर बाट में जाय कामधेनु को रीका। यह समाचार पाय, क्रोध कर सहसार्जुन ने आ, ऋषि का सिर काट डाला, कामधेनु भाग इन्द्र के यहां गई, रेनुका आय पति के पास खड़ी भई।

सिर खसोट लोटत फिरै, बैठि रहै गहि पाय,

छाती पीटे रुदन करि पिउपिउ कहि बिललाय।

उस काल रेनुका का बिलबिलाना औ रोना सुन दसों दिसा के दिगपाल कांप उठे, औ परशुराम जी का तप करते आसन डिगा, औ ध्यान छुटा। ध्यान के छुटते ही ज्ञान कर परशुराम जी अपना कुठार ले वहाँ आए, जहां पिता की लोथ पड़ी थी, औ माता पिटती खड़ी थी। देखते ही परशुराम जी को महा कोप हुआ; इस में रेनुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुत्र को रो रो कह सुनाया। बात के सुनते ही परशुराम जी इतना कह वहां गये, जहां सहस्रार्जुन अपनी सभा में बैठा था, कि माता! पहले मैं अपने पिता के बैरी को मारि आऊं, तब आय पिता को उठाऊंगा, उसे देखते ही परशुराम जी कोप कर बोले

अरे क्रूर कायर कुल द्रोही, तात मारि दुःख दीनौं मौही।

ऐसे कह जब फरसा ले परशुराम जी महा कोप में आए, तब वह भी धनुष बाण ले के सोंहीं खड़ा हुआ, दोनों बली महायुद्ध करने लगे; निदान लड़ते लड़ते परशुराम ने चार घड़ी के बीच सहस्रार्जुन को मार गिराया; पुनि उस का कटक चढ़ि आया, तिसे भी इन्हों ने उसी के पास काट डाला; फिर ह्वां से चाय पिता की गति करी। औ माता को समझा पुनि उसी ठौर परशुराम जी ने रुद्र यज्ञ किया, तभी से वह स्थान क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ; वहां जाकर ग्रहण में जो कोई दान स्नान तप यज्ञ करता है, उसे सहस्र गुणा फल होता है।

इस इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! प्रसङ्ग के सुनते ही सब यदुबंसियों ने प्रसन्न हो श्री कृष्णचन्द जी से कहा कि महाराज! शीघ्र कुरक्षेत्र को चलिये, अब बिलम्ब न करिये; क्योंकि पर्व पर पहुंचा चाहिये। बात के सुनते ही श्री कृष्णचन्द औ बलराम जी ने राजा उग्रसेन से पूछा कि महाराज! सब कोई कुरक्षेत्र को चलेगा, यहां पुरी की चौकसी को कौन रहेगा। राजा उग्रसेन ने कहा कहा अनिरुद्ध जी को रख चलिये, राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्ध को बुलाय समझायकर कहा, कि बेटा तुम यहां रहो गौ ब्राह्मण को रक्षा करो, औ प्रज्ञा को पालो, हम राजा जी के साथ सब यदु बंसियों समेत कुरक्षेत्र न्हाय आवें। अनिरुद्ध जी ने कहा, कहा जो आज्ञा महाराज! एक अनिरुद्ध जी को पुरो की रखवाली में छोड़ सुरसेन, वसुदेव, उद्धव, अक्रूर, कृतवर्मा आदि छोटे बड़े सब यदुबंसी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेन के साथ कुरक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए। जिस समै कटक समेत राजा उग्रसेन ने पुरी के बाहर डेरा किया उस काल सब जाय मिले, तिन के पीछे से श्री कृष्णचन्द जी भी भाई भौजाई को साथ ले आठों पटराणी औ सोलह सहस्र आठ सौ राणी औ बेटों पोता समेत जाय मिले। प्रभु के पहुंचते ही राजा उग्रसेन ने वहां से डेरा उठाया, औ राजा इन्द्र की भांति बड़ी धूमधाम से आगे को प्रस्थान किया।

***

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम – **पूर्व-पीठिका**, लेखक का नाम – सुलभ अग्निहोत्री, पृष्ठ संख्या – 424, प्रकाशक – रेडग्रैब बुक्स, भाषा – हिंदी, आईएसबीएन - 9387390225, आईएसबीएन 13 - 9789387390225

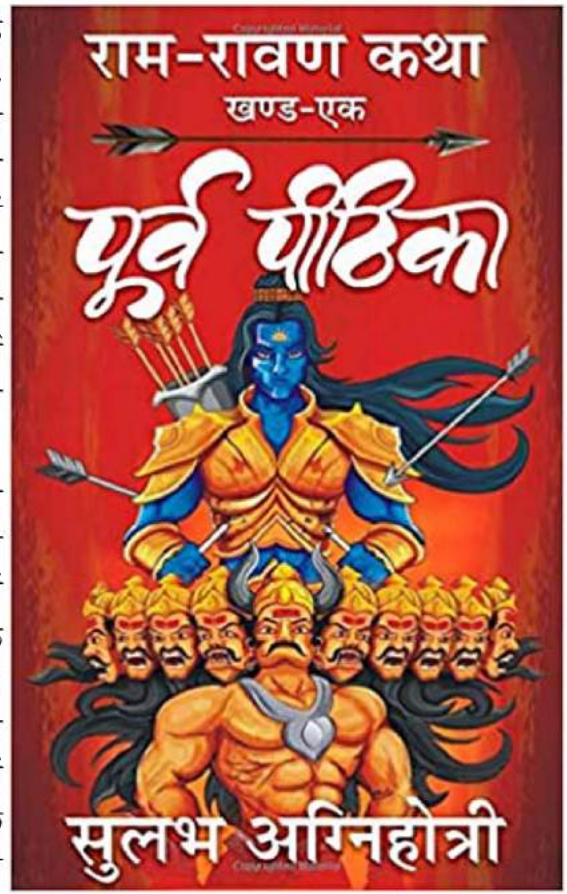

राम-कथा भारतीय जीवन में ऐसी घुली-मिली होती है कि अगर किसी से पूछ लिया जाए कि उसने पहली बार राम-कथा कब सुनी थी, तो वो बता ही नहीं पायेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि ये हमेशा से जीवन का ही अंग रहा हो। जो कथा इतनी बार इतने अलग-अलग रूपों में सुनाई गयी है, उसमें नया क्या होगा? आखिर क्यों पाठक एक और राम-रावण कथा की शृंखला पढ़ना चाहेंगे। जब सुलभ अग्निहोत्री की राम-रावण शृंखला का पहला भाग "पूर्व-पीठिका" वर्ष 2018 में प्रकाशित हुआ तो कई लोगों के मन में ये प्रश्न उठा था।

इसके पहले भाग का नाम पूर्व-पीठिका इसलिए रखा गया है; क्योंकि रामायण के कई पात्रों (खलनायक भी) राम से काफी पहले जन्म ले चुके थे। चाहे वो रावण उसके भाइयों और सूर्पनखा की कथा हो या जटायु-सम्पाती जैसे श्रीराम के सहयोगी हों, उनकी कथा रामजन्म से पहले आरम्भ होती हैं। अतः अगर आज कोई रामायण पढ़ने और उसके अलग अलग पाठों के बीच राम-रावण की कथा के पात्रों के बारे में विचार करे तो उसकी कहानी रामायण से काफी पहले, (कुछ तो दूसरे पुराणों से भी) पढ़नी पड़ेगी। लेखक ने ऐसी ही कथाओं का संकलन इस भाग में किया है।

एक व्यवस्थित क्रम में एक स्थान पर संकलित इन कथाओं को ही उपन्यास शृंखला का रूप दिया गया है। भाषा के स्तर पर लेखक ने यथासंभव भाषा को विदेशी प्रभावों से मुक्त रखने की चेष्टा की है। आज जहाँ लोग कामचलाऊ भाषा में लिखकर उसे नयी वाली हिंदी का नाम देने का प्रयास कर रहे हैं, ये एक सराहनीय प्रयास कहा जा सकता है। दूसरा विचारणीय प्रश्न है कि लेखक ने इतनी कथाओं को जब एक साथ मिलाया तो उन्होंने स्वयं कथा में क्या बदलाव किये? इसका उत्तर है कि लेखक ने बदलाव नहीं किये हैं!

कई कथाएँ जो आश्चर्यजनक लगती हैं, उन्हें भी अलग-अलग पुराणों से लिया गया है। बिना मूल कथा में बदलाव किये उसे वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास शायद इससे पहले केवल स्व. नरेंद्र कोहली जी ने किया था (हाल ही में अप्रैल, 2021 में कोरोना महामारी ने नरेंद्र कोहली को हमसे छीन लिया)। करीब 4 दशकों बाद किसी ने राम-कथा का स्वरुप यथावत् रखते हुए, उसे आम लोगों को रुचिकर लगने वाली भाषा में प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक दृष्टि से क्या हुआ होगा, इस विषय में लेखक केवल इशारा करते हैं। यहाँ भी वो निष्कर्ष निकालने की जिम्मेदारी पाठकों पर छोड़ते हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि शृंखला पठनीय है। पूर्व-पीठिका के बाद आगे इस शृंखला में दशानन रावण की बात की गयी है। लेखक का कहना है कि रावण का जन्म राम से पहले हुआ था, इसलिए रावण की कथा पहले और राम की कथा शृंखला के अन्तिम भाग में है। जहाँ तक पूर्व-पीठिका का प्रश्न है, करीब सवा चार सौ पन्नों का ये उपन्यास पाठक को बाँधे रखता है। पाठक के बँधे रहने की दूसरी वजह यह भी है कि राम-कथा के कई पहलू पाठकों को पहले से पता होते हैं। दशकों पहले की किसी घटना से आगे की पीढ़ियों पर क्या प्रभाव हुआ होगा, ये भी "पूर्व-पीठिका" पढ़ने से पता चलता है।

माता सीता सहित रामायण के कई पात्रों की कहानी "पूर्व-पीठिका" पढ़ने से पता चलती है। साथ ही, इस भाग को पढ़कर यह भी निश्चय होता है कि व्यक्तिगत अनुभवों का व्यक्ति के जीवन पर, उसके आगामी फैसलों पर, उसकी सोच और उसके व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता होगा। उदाहरण के तौर पर बाली-सुग्रीव, केवट-निषादराज, या फिर शबरी के जन्म, बालकाल की घटनाओं का उनके जीवन पर प्रभाव तो पड़ा ही होगा? ऐसे ही मारीच, विभीषण, इन्द्रजीत आदि के साथ भी हुआ होगा। इन सब कथाओं को गूंथकर "राम-रावण कथा" की शृंखला पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है।

लेखक सुलभ अग्निहोत्री पहले से कविताएँ और आलेख लिखने के लिए जाने जाते हैं। अब जब उनकी "राम-रावण कथा" शृंखला की तीन पुस्तकें आ चुकी हैं, तो पौराणिक कथाओं पर आधारित उपन्यास-लेखन में भी उन्हें सम्मानजनक स्थान मिल चुका है। आशा की जा सकती है कि वो भविष्य में भी ऐसी और रचनाओं से पाठकों को लाभान्वित करते रहेंगे।

समीक्षक- श्री आनन्द कुमार

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार (अप्रैल 2021)

अप्रैल का महीना अपने साथ ही "रामनवमी" के लिए आशाएँ लेकर आया था। जैसा कि विदित ही है, हर वर्ष रामनवमी के अवसर पर हनुमानजी के दो विग्रहों वाले पटना के महावीर मन्दिर में विशेष हर्षोल्लास का अवसर होता है। "संकटमोचन" एवं "मंगलमूर्ति" (दुःखहर्ता-सुखकर्ता) प्रतिमाओं वाले इस मन्दिर में रामनवमी के अवसर पर तीन से चार लाख भक्त दर्शन के लिए आते हैं। किन्तु इस वर्ष कोविड महामारी की दूसरी लहर ने अपना प्रकोप फिर बरसाया। आम जन को बीमारी के पुनः फैलना शुरू करने से अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा।

महावीर मन्दिर के विशेष प्रसाद "नैवेद्यम्" को मिला एफ.एस.एस.ए.आई. का गुणवत्ता प्रमाणपत्र

हाल ही में खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता के लिए प्रमाणपत्र देने वाली भारत की एकमात्र संस्था एफ.एस.एस.ए.आई. ने धार्मिक स्थलों पर दिए जाने वाले प्रसाद की गुणवत्ता जाँचकर उन्हें प्रमाणपत्र देने का कार्य आरम्भ किया। विगत करीब दो वर्षों से जारी इस योजना के तहत, लम्बी जाँच और लगातार निरीक्षण के बाद प्रसाद-जैसे खाद्यों को "भोग" नामक प्रमाणपत्र दिया जाता है। अब तक भारत भर में केवल आठ मन्दिर को ये प्रमाणपत्र मिल पाया है। अप्रैल की शुरुआत में (6 अप्रैल) एफ.एस.एस.ए.आई. द्वारा महावीर मन्दिर को गुणवत्ता प्रमाणपत्र प्रदान किया गया।

केन्द्रीय खाद्य विभाग के अधिकारियों ने इस अवसर पर बताया कि इस प्रमाणपत्र के लिए एक लम्बी जाँच की प्रक्रिया है। इसके तहत करीब एक वर्ष तक अधिकारीगण निरीक्षण के लिए आते रहे और "नैवेद्यम्" बनने की प्रक्रिया की बारीकी से जाँच की। इस अवसर पर महावीर मन्दिर न्यास समिति के सचिव, आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि स्वाद के लिए

"नैवेद्यम्" पहले ही प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि इसे विशेष तौर पर कर्णाटक से मँगवाए गए गाय के घी में बनाया जाता है। इसे बनाने वाले कारीगर भी तिरुपति मन्दिर से आये हुए कारीगर हैं, जो बनाने की शुद्ध और विशिष्ट प्रक्रिया से ही प्रसाद बनाते हैं।

इस प्रकार का प्रमाणपत्र पाने वाला महावीर मन्दिर देश का नौवाँ और उत्तर भारत का पहला मन्दिर है।

बिहार में पहली बार पाँच महीने के बच्चे की लेप्रोस्कोपिक पाइलोप्लास्टी

महावीर वात्सल्य अस्पताल में पेशाब की नली में रुकावट की सर्जरी की गयी। अस्पताल के शिशु रोग सर्जन ने बताया कि इतने कम उम्र के बच्चे की लेप्रोस्कोपिक पाइलोप्लास्टी का यह बिहार का पहला मामला है। गया से आए बच्चे के बाएँ साइड की किडनी में सूजन था। इससे किडनी के कार्य करने की क्षमता आधी हो गई थी। दूरबीन विधि से रुकावट वाले हिस्से को काटकर हटा दिया गया है। ऑपरेशन के बाद बच्चा ठीक हो गया है। डॉ. ओम पूर्वे के नेतृत्व में डॉ. पुलक तोष, डॉ. गीता कुमारी, डॉ. राकेश सर्जरी में शामिल थे। डॉ. पूर्वे ने बताया कि ऐसे मामलों में दो साल से कम उम्र के बच्चे की सामान्य रूप से ओपन सर्जरी होती है। ऑपरेशन में मात्र बीस हजार का खर्च आया।

स्त्री एवं प्रसूति रोग विभाग में बच्चेदानी की सर्जरी हो रही दूरबीन विधि से

महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डॉ. एस. एन. सिन्हा ने बताया कि महावीर वात्सल्य अस्पताल में काफी रियायती दरों पर शिशु और स्त्री रोगों की लेप्रोस्कोपिक सर्जरी की जाती है। फरवरी महीने से अस्पताल में यह सुविधा शुरू हुई है। स्त्री और प्रसूति रोग विशेषज्ञ डॉ. अनामिका पाण्डेय ने बताया कि रिकवरी टाइम कम होने और अस्पताल से जल्दी छुट्टी मिलने के कारण दूरबीन विधि ज्यादा कारगर साबित हो रहा है। महावीर वात्सल्य अस्पताल में बन्ध्याकरण और एक्टोपिक प्रेग्नेंसी का ऑपरेशन भी अब दूरबीन विधि से किया जा रहा है।

कोविड-19 संक्रमण की दूसरी लहर के कारण भक्तों के लिए बंद हुआ महावीर मन्दिर

पटना जंक्शन स्थित महावीर मन्दिर में राज्य सरकार के निर्णय के आलोक में भक्तों का प्रवेश शनिवार (10 अप्रैल 2021) से बन्द हो गया। लेकिन भक्तों को नैवेद्यम् मिलता रहेगा। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि मन्दिर के प्रवेश द्वार पर स्थित सभी नैवेद्यम् काउंटर सुबह से शाम 7 बजे तक खुले रहेंगे। शनिवार को निर्धारित अवधि में श्रद्धालुओं ने नैवेद्यम् खरीदा और मन्दिर के बाहर से ही महावीर हनुमानजी को निवेदित किया। सिन्दूर-सिंगार और महामृत्युंजय जप, जिसे मन्दिर के अंदर केवल पूजारी करेंगे, उसकी रसीद के लिए निकास द्वार के पास काउंटर खोला गया है। जियो टीवी पर ऑनलाइन दर्शन भी कर सकते हैं।

नवरात्रि के अवसर पर पूजा और प्रसाद की ऑनलाइन व्यवस्था की गई है। इस सुविधा का लाभ अभी पटना के निवासी ले सकते हैं। Google pay के माध्यम से फोन नं 9334467800, Naivedyam Division पर 500 रुपये की राशि का भुगतान करेंगे और वाट्सएप नंबर 9334467800 पर अपना नाम, पिता का नाम, गोत्र, अराध्य देवी/देवता का नाम और पता भेजेंगे। महावीर मन्दिर के पुजारी भक्त का नाम, गोत्र आदि के साथ संकल्प कर संबंधित अराध्य की पूजा करेंगे और एक किलो नैवेद्यम् प्रसाद सिन्दूर आदि के साथ भक्त के पते पर भेज दिया जाएगा।

कलश-स्थापन के साथ महावीर मन्दिर में शुरू हुई चैत्र नवरात्रि पूजा

मंगलवार (13 अप्रैल 2021) को कलश स्थापना के साथ पटना जंक्शन स्थित महावीर मन्दिर में चैत्र नवरात्रि पूजा शुरू हो गयी। भक्तों की अनुपस्थिति में भी मन्दिर के पुजारी और पुरोहितों ने कलश-पूजन किया। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि पूरे विधि-विधान से कलश स्थापना हुई। नौ दिनों तक वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस का विधिवत् पाठ भी किया गया। रामनवमी के दिन महावीर हनुमान्, श्रीराम और सभी देवी-देवताओं को नये वस्त्र धारण कराए गए।

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि महावीर मन्दिर के 300 साल के इतिहास में इस बार लगातार दूसरे साल भक्त मन्दिर में दर्शन नहीं कर पाए। लॉकडाउन के कारण पिछले वर्ष कलश-स्थापन भी नहीं हो पायी थी। रामनवमी के दिन मन्दिर में दर्शन के लिए हरेक साल आनेवाले तीन से चार लाख श्रद्धालुओं को इस बार भी निराशा होगी। सन् 1720 से 1730 के बीच स्वामी बालानन्द द्वारा स्थापित ऐतिहासिक महावीर मन्दिर में रामनवमी में दर्शन के लिए कई किलोमीटर लंबी कतार लगती है।

मिलेगा नैवेद्यम्

महावीर मन्दिर का विशेष प्रसाद नैवेद्यम् रामनवमी के दिन भी भक्तों को मिलता रहा। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर स्थित नैवेद्यम् काउंटरों पर नैवेद्यम सुबह से शाम छह बजे तक उपलब्ध है। नवरात्रि में भक्तों के नाम, गोत्र आदि के संकल्प के साथ पूजा कर नैवेद्यम् और सिन्दूर की होम डिलीवरी की ऑनलाइन बुकिंग भी की जा रही है।

ऑनलाइन जियो टीवी पर होता रहा दर्शन

पटना का विख्यात महावीर मन्दिर रामनवमी के अवसर पर भक्तों के लिए बंद रहा। मन्दिर न्यास समिति के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने कोरोना के बढ़ते संक्रमण को ध्यान में रखते हुए भक्तों से मन्दिर नहीं आने की अपील की। रामनवमी के दिन महावीर मन्दिर में भक्तों की सुख-शान्ति और कोरोना संकट से मुक्ति के लिए विशेष पूजा की गयी। भक्तों के लिए जियो टीवी के माध्यम से ऑनलाइन दर्शन की व्यवस्था की गई।

मन्दिर में तीनों निर्धारित स्थानों पर महावीरी ध्वज बदले गए। मुख्य पूजा मन्दिर परिसर के उत्तरी भाग में स्थित ध्वज के पास हुई। कार्यालय के निकट दूसरे ध्वज स्थल पर पूर्व की भाँति भक्तों के नाम, गोत्र आदि के संकल्प के साथ ध्वज लगाए गये। मन्दिर काउंटर से इसके लिए 49 भक्तों ने रसीद कटायी थी। उनके नाम से अलग-अलग ध्वज का संकल्प कर उनकी स्थापना मन्दिर के पुरोहितों के द्वारा की गयी। शनिदेव के निकट स्थित महावीरी ध्वज भी बदला गया। हर वर्ष रामनवमी के दिन महावीर मन्दिर में 3-4 लाख श्रद्धालु दर्शन हेतु आते थे। इसके लिए पुलिस-प्रशासन के सहयोग से विशेष इंतजाम किए जाते रहे हैं। गत वर्ष भी कोविड संक्रमण के कारण भक्त हनुमान जी के दो विग्रहों वाले इस अनूठे मन्दिर में दर्शन नहीं कर पाए थे।

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि राम जन्मभूमि मन्दिर प्रबन्धन ने भी संक्रमण के मद्देनजर भक्तों से दर्शन हेतु न आने की अपील की है। महावीर मन्दिर के अन्य सेवा प्रकल्प जैसे 'दरिद्रनारायण भोज' जिसमें गरीबों के लिए मुफ्त भोजन की व्यवस्था की जाती है तथा सिन्दूर-सिंगार पूजा आदि के लिए मन्दिर के काउंटर से रसीद कट रही है।

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि मन्दिर का विशेष प्रसाद नैवेद्यम् भी अब पटना के भक्तगण ऑनलाइन (गूगल पे नंबर 9334467800 के जरिए पेमेंट के बाद 9334468401 पर व्हाट्स एप्प सन्देश करके) मँगवा सकते हैं। इसके लिए मन्दिर के वेबसाइट पर बुकिंग की व्यवस्था की गयी है। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर स्थित काउंटरों पर भी सुबह से शाम छह बजे तक नैवेद्यम् उपलब्ध है।

- **महावीर मन्दिर की ओर से बेगूसराय में कोविड डेडिकेटेड अस्पताल**
- **शुरूआती लक्षण वाले कोविड मरीजों को नि:शुल्क दवा किट**
- **नि:शुल्क ऑक्सीजन देने के लिए लगेगा नया प्लांट**

पटना के महावीर मन्दिर प्रबन्धन ने कोविड मरीजों के इलाज समेत कई सुविधाओं की घोषणा की है। मन्दिर न्यास द्वारा संचालित बेगूसराय स्थित 'महावीर अग्रसेन सेवा सदन' को कोविड डेडिकेटेड अस्पताल के रूप में परिवर्तित करने का निर्णय लिया गया है। इसके लिए डाक्टरों की तैनाती कर दी गई है। शीघ्र ही अस्पताल में कोरोना मरीजों का इलाज शुरू हो जाएगा। दिनेश टेबरीवाल को इसका समन्वयक बनाया गया है। पहले यहाँ सामान्य रोगियों के लिए अस्पताल खोला जाना था। महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित पटना के महावीर कैंसर संस्थान, महावीर हृदय अस्पताल, महावीर वात्सल्य अस्पताल में सुपर स्पेशियलिटी सेवाओं के कारण उन्हें कोविड अस्पताल में परिवर्तित करना संभव नहीं हो पाया है। शुक्रवार को महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल की ओर से बुलाई गई सभी महावीर अस्पतालों के निदेशकों और वरीय चिकित्सकों की बैठक के बाद कोरोना मरीजों के इलाज के लिए बेगुसराय के नये अस्पताल को कोविड अस्पताल के रूप में शुरू करने का निर्णय लिया गया है।

शेष आवरण पृ. 3 पर जारी

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

जल-सूक्त

(ऋग्वेद, प्रथम मंडल, सूक्त संख्या 23 , मन्त्र संख्या 16 से 23 तक।)

गताङ्क से आगे

वेदों में जल को देवता कहा गया है। जल के लिए आपोदेव नाम आया है। ऋग्वेद के चार सूक्त इसी आपोदेव को समर्पित हैं। हम इन सूक्तों में वैदिक परम्परा की दृष्टि में जल के महत्त्व पर प्रकाश पाते हैं। यहाँ ऋग्वेद से उन सूक्तों को क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा॥
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥20॥

मुझ (मंत्रदृष्टा ऋषि) से सोमदेव ने कहा है कि जल में (जलसमूह में) सभी औषधियाँ समाहित हैं। जल में ही सर्व सुख प्रदायक अग्नि तत्व समाहित है। सभी औषधियाँ जलों से ही प्राप्त होती हैं।

आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे मम॥
ज्योक् च सूर्यं दृशे॥21॥

हे जल समूह! जीवनरक्षक औषधियों को हमारे शरीर में स्थित करें, जिससे हम निरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करते रहें॥21॥

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि॥
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥22॥

हे जलदेवों! हम (याजकों) ने अज्ञानतावशं जो दुष्कृत्य किये हों, जानबूझकर किसी से द्रोह किया हो, सत्पुरुषों पर आक्रोश किया हो या असत्य आचरण किया हो तथा इस प्रकार के हमारे जो भी दोष हों, उन सबको बहाकर दूर करें॥22॥

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि॥
पयस्वानग्न आ गहि तंमा सं सृज वर्चसा॥23॥

आज हमने जल में प्रविष्ट होकर अवमृथ स्नान किया है। इस प्रकार जल में प्रवेश करके हम रस से आप्लावित हुए हैं। हे पयस्वान्! हे अग्निदेव! आप हमें वर्चस्वी बनाएँ। हम आपका स्वागत करते हैं।

***

व्रत-पर्व

वैशाख, 2078 वि. सं.

28 अप्रैल-26 मई, 2021ई.

1. वरूथिनी एकादशी व्रत, वैशाख कृष्ण एकादशी, 7 मई, 2021ई., शुक्रवार।

पिछली सन्ध्या 5 बजे से एकादशी का आरम्भ हो रहा है, अतः इसी दिन वैष्णवों और गृहस्थों के लिए व्रत होगा तथा अगले दिन कुश के जल से पारणा होगी।

2. वल्लभाचार्य जयन्ती, वैशाख कृष्ण एकादशी, 7 मई, 2021ई., शुक्रवार।

वैशाख कृष्ण एकादशी। भक्तिकालीन सगुणधारा की कृष्णभक्ति शाखा के स्तंभ एवं पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य का जन्म विक्रम संवत् 1535 अर्थात् 1479 ई. में हुआ था। मध्यकालीन हिन्दी के कवियों में सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास आदि इन्ही की परम्परा में हुए।

3. अक्षय तृतीया, परशुराम जयन्ती, वैशाख शुक्ल तृतीया, 14 मई, 2021ई., शुक्रवार।

मान्यता के अनुसार इसी दिन त्रेता युग का आरम्भ हुआ था। इस दिन किये गये दान को अक्षय फल वाला माना जाता है।

4. गणेश चतुर्थी, 15 मई, 2021ई., शनिवार।

5. विष्णुषट्पदीसंक्रान्ति, 15 मई, 2021ई., शनिवार।

6. आदिशंकराचार्य जयन्ती, वैशाख शुक्ल पंचमी, 17 मई, 2021ई., सोमवार।

परम्परानुसार, आदि शंकराचार्य की 2528वीं जयन्ती है। आदि शंकराचार्य के इस जन्मवर्ष को इतिहासकार लोग नहीं मानते, फिर भी शंकराचार्य के मठों में वैशाख शुक्ल पंचमी को उनकी जयन्ती मनाने का प्रचलन है।

7. रामानुजाचार्य जयन्ती, वैशाख शुक्ल पंचमी, 17 मई, 2021ई., सोमवार।

इस वर्ष रामानुजाचार्य की 1003वीं जयन्ती होगी। विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक रामानुजाचार्य का जन्म 1017 ई. में तमिलनाडु में हुआ था। इन्होंने चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु की उपासना करने की परम्परा चलायी तथा, गृहस्थों को भी भक्तिमार्ग तथा उपासना मार्ग के द्वारा मोक्ष से जोड़ा। सम्पूर्ण मध्यकाल की भक्तिधारा पर इनके दर्शन का प्रभाव है।

8. जह्नुसप्तमी, जाह्नवी सप्तमी, वैशाख शुक्ल सप्तमी, 19 मई, 2021ई., बुधवार।

पौराणिक मान्यता के अनुसार गंगावतरण के समय जह्नुमुनि एक पर्वत पर तपस्या कर रहे थे तो उसी रास्ते से आ रही गंगा के गर्जन का स्वर उन्हें सुनाई दिया। मुनि ने तपस्या भंग होने के कारण क्रोधित होकर गंगा के जय को पी लिया। बाद में राजा भगीरथ के द्वारा उसनकी स्तुति की गयी तो जह्नु ने कहा कि यदि अब मैं गंगा को अपने मुख से निकालता हूँ तो वह अपवित्र कहलायेगी, अतः उन्होंने अपने कान से गंगा की धारा को मुक्त किया। मान्यता के अनुसार भागलपुर के पास सुल्तानगंज में अजगवीनाथ में यह घटना इसी दिन हुई थी।

9. जानकी नवमी, वैशाख शुक्ल नवमी, दिनांक 20 मई, 2021ई., गुरुवार।

राजा जनक के द्वारा यज्ञभूमि के शोधन के लिए हल चलाने के क्रम में जगज्जननी जानकी का प्रादुर्भाव इसी दिन माना जाता है। इसे मध्याह्नव्यापिनी व्रत माना गया है। रामानन्दाचार्य के वैष्णवमताब्जभास्कर तथा अन्य स्रोतों (विशेष विवेचन धर्मायण अंक संख्या-94 में लेख के रूप में देखें) के अनुसार इस दिन जानकी नवमी का व्रत किया जाना चाहिए तथा इस अवसर पर उत्सव मनाना चाहिए।

10. मोहिनी एकादशी, वैशाख शुक्ल एकादशी, दिनांक 22 मई, 2021ई. (गृहस्थों के लिए), शनिवार।

11. मोहिनी एकादशी, वैशाख शुक्ल एकादशी, दिनांक 23 मई, 2021ई. (वैष्णवों के लिए), रविवार।

12. नरसिंह चतुर्दशी, वैशाख शुक्ल चतुर्दशी, 25 मई, 2021ई., मंगलवार।

इस दिन भगवान् विष्णु के दशावतारों में नरसिंहावतार हुआ था।

13. बुद्ध-जयन्ती एवं कूर्म-जयन्ती, वैशाख पूर्णिमा, 26 मई, 2021ई., बुधवार।

इसी दिन बुद्ध की 2645जयन्ती तथा कूर्म-जयन्ती मनायी जाती है।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम,** हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

मन्दिर समाचार, पृ. सं. 76 से जारी

कोविड के मरीजों के लिए महावीर मन्दिर के द्वारा तैयार किया गया है।

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अति महत्त्वपूर्ण मानवीय दायित्व के तहत मन्दिर की ओर से कोरोना के गम्भीर मरीजों को ऑक्सीजन नि:शुल्क मुहैया कराने के लिए भी पहल की गई है। इसके लिए महावीर वात्सल्य अस्पताल परिसर में दो नये ऑक्सीजन प्लांट लगाए जाएँगे। एक में लिक्विड से ऑक्सीजन तैयार होगा और दूसरे में हवा से। लिक्विड ऑक्सीजन प्लांट के लिए कोलकाता की कंपनी लिंडे इंडिया लिमिटेड को आर्डर किया गया है। हवा से ऑक्सीजन तैयार करने के लिए औरंगाबाद, महाराष्ट्र की एजेंसी एयरोक्स टेक्नोलॉजी प्राइवेट लिमिटेड को आर्डर किया गया है। प्लांट की आपूर्ति होने के बाद दोनों प्लांट चालू होते ही कोरोना मरीजों को नि:शुल्क ऑक्सीजन मिलेगा। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अभी सिलेंडर की अनुपलब्धता के कारण शुरुआत में खाली सिलेंडर लाने पर ऑक्सीजन दिया जाएगा। इसके लिए कोई शुल्क नहीं लगेगा। यह सुविधा केवल कोरोना के गम्भीर मरीजों के लिए है। अस्पताल में सिलेंडर की आपूर्ति होने पर जरूरतमंद कोरोना मरीजों को सिलेंडर के साथ ऑक्सीजन मिलेगा। उन्होंने बताया कि सबकुछ प्लांट की आपूर्ति में लगनेवाले समय पर निर्भर करेगा।

शुरूआती लक्षण वाले कोरोना मरीजों के लिए महावीर मन्दिर की ओर से जरूरी दवाओं की किट नि:शुल्क दी जाएगी। महावीर मंदिर न्यास द्वारा संचालित महावीर कैंसर संस्थान, महावीर वात्सल्य अस्पताल और महावीर आरोग्य संस्थान तीनों स्थानों पर एक-एक सेंटर बनाया गया है। सोमवार से दवाओं का वितरण शुरू हो जाएगा।

कोरोना मरीजों को एंबुलेंस की किल्लत को देखते हुए महावीर मन्दिर प्रबंधन ने नि:शुल्क एंबुलेंस और अन्तिम यात्रा वाहन देने का निर्णय लिया है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक और पीएमसीएच के पूर्व प्राचार्य डॉ. एस. एन. सिन्हा को इसका नोडल अधिकारी बनाया गया है। कोरोना मरीजों को मुफ्त एंबुलेंस सहायता के लिए दूरभाष नं 0612-2275657 जारी किया गया है।

कोरोना संबन्धित नि:शुल्क चिकित्सकीय परामर्श के लिए तीनों अस्पताल के चिकित्सकों का महावीर मन्दिर कोविड-19 हेल्प ग्रुप बनाया गया है। महावीर कैंसर संस्थान के चिकित्सा अधीक्षक डॉ एल.बी. सिंह को इसका समन्वयक बनाया गया है। सोमवार से एक दर्जन से अधिक डॉक्टर मोबाइल पर कोरोना संबंधित नि:शुल्क चिकित्सकीय परामर्श देंगे। रविवार को डाक्टरों की सूची मोबाइल नंबर के साथ जारी कर दी जाएगी।

पिछले साल भी महावीर मंदिर न्यास की ओर से कोविड संक्रमण के लिए राज्य सरकार के कोष में एक करोड़ रुपये की सहायता राशि दी गई थी।

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

नैवेद्यम् को मिला 'भोग' सर्टिफिकेट। महावीर मन्दिर के प्रसाद को विशिष्ट मान्यता। विशिष्ट मान्यता वाला यह सर्टिफिकेट पाने वाला महावीर मन्दिर बिहार का पहला मन्दिर है। नैवेद्यम् को उसकी विशिष्ट गुणवत्ता, स्वाद, शुद्धता, स्वच्छता, हाईजीन आदि मानकों पर खरा उतरने के बाद एफ.एस.एस.ए.आई. ने यह सर्टिफिकेट जारी किया है। अभी तक ओंकारेश्वर, महाकालेश्वर समेत देश के चुनिन्दा मन्दिरों के प्रसाद को ही यह सर्टिफिकेट मिला है।

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित